

अथैकविंशोऽध्यायः

ऋषिः—शुनःशेषः। देवता—वरुणः। छन्दः—निचृद्गायत्री। स्वरः—षड्जः॥

प्रभु की कामना

इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय । त्वामवस्युराचके ॥१॥

१. 'शुनःशेष' ऋषि के ये मन्त्र हैं। सुख का (शुनं) निर्माण करनेवाला ऋषि प्रार्थना करता है कि हे वरुण=मेरे जीवन से सब द्वेषों का निवारण करनेवाले और मुझे श्रेष्ठ बनानेवाले प्रभो! (वरुण=श्रेष्ठ) मे=मेरी इमं हवम्=इस पुकार को श्रुधि=सुनिए च=और अद्य=आज ही मृडय=सुखी कीजिए। २. अवस्युः=अपने रक्षण की कामनावाला मैं त्वाम्=आपकी आचके=(कामये) कामना करता हूँ, आपको चाहता हूँ। वस्तुतः रक्षण करनेवाले वे प्रभु ही हैं। जगज्जननी की गोद में ही यह जीव सुरक्षित रह पाता है।

भावार्थ—प्रभु वरुण हैं, मैं उन्हें पुकारता हूँ, वे मेरे जीवन को सुखी करते हैं। हम अपनी रक्षा करना चाहें तो उसका एकमात्र उपाय प्रभु-प्राप्ति की कामना है।

ऋषिः—शुनःशेषः। देवता—वरुणः। छन्दः—निचृत्त्रिष्टुप्। स्वरः—धैवतः॥

ज्ञान+यज्ञ

तत्त्वां यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः ।

अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशंसु मा नऽआयुः प्र मोषीः ॥२॥

१. ब्रह्मणा=स्तोत्रों से व वेदज्ञान से वन्दमानः=आपका स्तवन करता हुआ त्वा=आपसे तत्=वही बात यामि=(याचामि) चाहता हूँ, यजमानः=यज्ञशील पुरुष हविर्भिः=हवियों के द्वारा, अर्थात् दानपूर्वक अदन के द्वारा तत्=वही आशास्ते=इच्छा करता है कि हे वरुण=द्वेष का निवारण करके हमें श्रेष्ठ बनानेवाले प्रभो! इह=इस मानव-जीवन में अहेडमानः=हमपर क्रोध न करते हुए आप हमें बोधि=बोधयुक्त कीजिए। हे उरुशंसु=बहुतों से स्तुति किये गये प्रभो! आप नः=हमारे आयुः=जीवन को मा प्रमोषीः=मत चुरने दीजिए। हमारी आयु को आप व्यर्थ न जाने दीजिए। २. ज्ञान-प्राप्ति व जीवन को सार्थक करने के दो ही उपाय हैं—(क) हम वेदज्ञान से प्रभु का स्तवन करें तथा (ख) यज्ञशील बनकर हविर्भुक् बनें, दान देकर बचे हुए को खानेवाले हों, केवलादी न बन जाएँ।

भावार्थ—ज्ञान व यज्ञ ही जीवन को सार्थक बनानेवाले हैं।

ऋषिः—वामदेवः। देवता—अग्निवरुणौ। छन्दः—स्वराट्पङ्क्तिः। स्वरः—पञ्चमः॥

द्वेष-दूरीकरण

त्वं नोऽअग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेडोऽअव यासिसीष्ठाः ।

यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषाथ्सि प्र मुमुग्ध्यस्मत् ॥३॥

१. हे अग्ने=अग्नि के समान ज्ञान के प्रकाश से चमकनेवाले वरुणस्य विद्वान्=सब बुराइयों का निवारण करनेवाले, हमारे जीवनों को श्रेष्ठ बनानेवाले विद्वन्! प्रभु को

जाननेवाला त्वम्=तू नः=हमसे देवस्य=दिव्य गुणों के पुञ्ज, सब-कुछ देनेवाले प्रभु के हेडः=क्रोध को अवयासिसीष्ठाः=दूर नष्ट कर (दसु उपक्षये)। हमारे ज्ञान देनेवाले आचार्य (क) 'अग्नि' हों-अग्नि के समान ज्ञान से प्रकाशित हों तथा (ख) उस प्रभु के जाननेवाले हों, जिस प्रभु का ज्ञान ही हमारे जीवनों को उत्तम बनाता है। ये विद्वान् ज्ञान-प्रदान द्वारा हमारे जीवनों में इस प्रकार परिवर्तन पैदा करें कि हम कभी भी 'वरुण' प्रभु के क्रोध के पात्र न हों। २. हे विद्वन्! आप यजिष्ठः=अधिक-से-अधिक यज्ञ करनेवाले, देवों का आदर करनेवाले हो। वह्नितमः=ऊँचे-से-ऊँचे ज्ञान का वहन करनेवाले हो। शोशुचानः=इसी कारण अपने जीवन को अत्यन्त पवित्र बनानेवाले हो। ३. आप हमें उपदेश देकर अस्मत्=हमसे विश्वा द्वेषांसि=सब द्वेष की भावनाओं को प्रमुमुग्धि=छुड़ा दीजिए।

भावार्थ—हम पारस्परिक कलह व ईर्ष्या-द्वेष को दूर करें। परस्पर प्रेम से वर्ते तभी हम प्रभु की कृपा के पात्र होंगे।

ऋषिः—वामदेवः। देवता—अग्निवरुणौ। छन्दः—स्वराट्पङ्क्तिः। स्वरः—पञ्चमः॥

सत्सङ्ग

स त्वं नोऽअग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठोऽअस्या उषसो व्युष्टौ।

अव यक्ष्व नो वरुणःरराणो वीहि मृडीकःसुहवो नऽएधि॥४॥

१. हे अग्ने=अग्निवत् प्रकाशमान विद्वन्! सः त्वम्=वह आप नः=हमारे अवमः=अत्यन्त रक्षक भवः=होओ। २. अस्याः उषसो व्युष्टौ=इस उषःकाल के आने पर, अन्धकार के दूर होने पर आप ऊती=रक्षा के दृष्टिकोण से नेदिष्ठः=अन्तिकतम हो। आपके सामीप्य में मैं बुराइयों से बचा रहूँगा और ३. रराणः=(रा दाने) उत्तम ज्ञान देते हुए आप नः=हमें वरुणं अवयक्ष्व=द्वेष-निवारण करनेवाले प्रभु के साथ सङ्गत कीजिए, अर्थात् यह विद्वानों का दिया हुआ ज्ञान हमें प्रभु के साथ सङ्गत करनेवाला हो। ४. इस प्रकार आप हमें मृडीकम्=सुख को वीहि=प्राप्त कराइए। ५. आप नः=हमारे लिए सुहवः=सुगमता से पुकारने योग्य एधि=होओ। हम जब-जब ज्ञान-प्राप्ति के लिए आपको पुकारें तब-तब आप हमारी पुकार को सुनें।

भावार्थ—हमें प्रतिदिन विद्वानों का सङ्ग प्राप्त हो। वे हमें ज्ञान के द्वारा प्रभु से सङ्गत करें और इस प्रकार हमें सुखी करें। सत्सङ्ग के द्वारा अपने में उत्तमगुणों को उत्पन्न करनेवाला यह व्यक्ति 'वामदेव' बनता है।

ऋषिः—वामदेवः। देवता—आदित्याः। छन्दः—त्रिष्टुप्। स्वरः—धैवतः॥

वेदमाता

महीमू षु मातरःसुव्रतानामृतस्य पत्नीमवसे हुवेम।

तुविक्षत्रामजरन्तीमुरुचीथ सुशर्माणमदितिःसुप्रणीतिम्॥५॥

१. गतमन्त्र में भावना यह थी कि विद्वान् लोग ज्ञान देते हुए हमें प्रभु से सङ्गत करनेवाले हों। उस ज्ञान की प्राप्ति के लिए यह वामदेव वेदमाता की आराधना करता है और कहता है कि हम अवसे=रक्षण के लिए व तृप्ति के अनुभव के लिए (अवनाय तर्पणाय वा) हुवेम=इस वेदवाणी को पुकारते हैं, इसे प्राप्त करने के लिए प्रार्थना करते हैं। उस वेदवाणी को जो २. महीम्=(महतीम्) महनीय है, हमारे जीवनों को महिमायुक्त

करनेवाली है, ऊ=और ३. सुव्रतानाम् सुमातरम्=उत्तम व्रतों का सुन्दरता से निर्माण करनेवाली है। यह वेदवाणी हमारे जीवनों को व्रतमय जीवनवाला बनाती है। ४. ऋतस्य पत्नीम्=यह ऋत का, नियमपरायणता व यज्ञ का पालन करानेवाली है। इस ज्ञान की वाणी के अध्ययन के परिणामस्वरूप हम सब कार्यों में बड़े नियमित व मर्यादित हो जाते हैं और हमारा जीवन यज्ञशील होता है। ५. तुविक्षत्राम्=यह ज्ञान की वाणी वासनाओं के प्रबल व बहुत अधिक (तुवि) क्षतों (चोटों) से हमें बचानेवाली है। ज्ञान वासनाओं के आक्रमण के लिए ढाल के समान है। ६. अजरन्तीम्=(न जीर्यति) यह ज्ञानवाणी कभी जीर्ण होनेवाली नहीं। 'पश्य देवस्य काव्यं न ममार न जीर्यति'। यह अपने अध्ययन करनेवाले को जीर्णता से बचानेवाली है। ७. उरूचीम्=(उरु अञ्च) यह अत्यन्त क्रियाशील है। इसका स्वाध्याय करनेवाला क्रियाशील होता है। इसी क्रिया के द्वारा ही यह सुशर्माणम्=उत्तम सुख को प्राप्त करानेवाली है। (शोभनं शर्म यस्याः) ८. अदितिम्=जो हमारा नाश नहीं होने देती, प्रत्युत हमारे जीवन में दिव्य गुणों का निर्माण करनेवाली है। ९. सुप्रणीतिम्=(शोभना प्रणीतिः स्याः) इससे हमारे जीवनों का मार्ग उत्तम होता है, हमारे जीवनों का उत्तम निर्माण होता है।

भावार्थ—वेदवाणी को हम अपने जीवनों की उत्तमता के लिए आराधित करते हैं।

ऋषिः—गयःप्लातः। देवता—अदितिः। छन्दः—भुरिक्विष्टुप्। स्वरः—धैवतः॥

दैवी नाव

सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिः सुप्रणीतिम्।

दैवीं नावञ्च स्वर्ित्रामनागसमस्त्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये॥६॥

१. गतमन्त्र का ऋषि अदिति=अदीना देवमाता की उपासना करके 'वामदेव' बनता है और वामदेव बनने के कारण ही 'गयस्फान' होता है—'गयाः प्राणाः तान् प्राति-पूरयति' अपने में प्राणशक्ति का पूरण करनेवाला होता है। यह 'गयःप्लातः' अपने इस शरीर को एक 'दैवी नाव' उस देव से दी गई नाव के रूप में समझता है और इस नाव के द्वारा भवसागर को तैरकर अपने लक्ष्य-स्थान पर पहुँचने के लिए प्रयत्नशील होता है। 'अत्रा जहाम अशिवा ये असन् शिवान् वयमुत्तरेमाभिवाजान्'=सब अशिवों को छोड़कर हम परले पार पहुँचकर शिवों को प्राप्त करनेवाले बनें। २. एवं, इस शरीररूप नाव का महत्त्व स्पष्ट है। यह सुत्रामाणम्=उत्तमता से रक्षित की जानेवाली हो (सुष्टु त्रायते)। इस शरीररूप नाव की जितनी भी रक्षा की जाए वह थोड़ी है। ३. पृथिवी=(प्रथ विस्तारे) यह विस्तारवाली है। शरीररूप नाव ने ब्रह्माण्ड के सारे देवों का अधिष्ठान बनना है, अतः इसे विस्तृत होना ही चाहिए। ४. द्याम्=(दिव्=द्युति) यह प्रकाशमय हो। प्रत्येक वाहन में प्रकाश का होना अत्यन्त आवश्यक है। इसके बिना उसके मार्गभ्रष्ट होने व टकरा जाने की आशंका बनी ही रहती है। ५. अनेहसम्=(वत्रि go एह च) यह अहन्तव्य है, नष्ट करने योग्य नहीं। इतनी महत्त्वपूर्ण व दुर्लभ वस्तु नष्ट करने योग्य कैसे हो सकती है? अथवा (हेड=क्रोध-उ०) क्रोधरहित यह नाव होनी चाहिए। लक्षणा से नावस्थ पुरुषों को कभी क्रोध न करना चाहिए। क्रोध में नाविक चेतना को खो बैठेगा और नाव को ठीक प्रकार से न चला पाएगा। ६. सुशर्माणम्=(शोभनं शर्म यया) यह उत्तम कल्याण को प्राप्त करानेवाली है अथवा यह (शर्म=गृह, आश्रय) शोभन आश्रयवाली है। ७. अदितिम्=अखण्डित है। शरीर का स्वस्थ होना ही इस नाव का न खण्डित होना है। ८. सुप्रणीतिम्=यह उत्तम

प्रणयनवाली है। बड़ी उत्तमता से आगे-आगे बढ़ रही है। ९. **स्वरित्राम्**=उत्तम चप्पूओंवाली है, मन, बुद्धि व इन्द्रियाँ ही इस नाव के अरित्र (oar) हैं। १०. **अनागसम्**=यह निर्दोष है, शरीररूप नाव में किसी अङ्ग का विकृत होना ही उसका दोष है। यह दोषों से रहित है। ११. **अस्त्रवन्तीम्**=यह चू नहीं रही। शरीर में सोम का सुरक्षित होना ही इसका न चूना है। १२. ऐसी इस **दैवीं नावम्**=देव परमात्मा की ओर ले-जानेवाली नाव पर हम आरोहण करें। इस प्रकार निर्दोष नाव पर बैठकर ही हम संसार-समुद्र को पार कर सकेंगे।

भावार्थ—हम इस शरीररूपी दैवी नाव पर आरोहण करें। इस उत्तमता से प्रणयन की जानेवाली नाव के द्वारा संसार-समुद्र को तैरकर यात्रा को पूर्ण करें।

ऋषिः—गयःप्लातः। देवता—स्वर्ग्या नौः। छन्दः—यवमध्यागायत्री। स्वरः—षड्जः॥

शतारित्रा नौः

सुनावमा रुहेयमस्त्रवन्तीमनागसम् । शतारित्राथस्वस्तये ॥७॥

१. 'गयःप्लात' ही कह रहा है कि मैं **सुनावम्**=उत्तम नाव पर **आरुहेयम्**=आरुढ़ होऊँ। उस नाव पर जो २. **अस्त्रवन्तीम्**=सुत नहीं हो रही है। इस शरीररूप नाव में सोम का सुरक्षित न होना ही इसका चूना है। ३. **अनागसम्**=यह नाव आगस् से रहित है, दोषरहित है। ये मल ही दोष हैं, उनसे यह शून्य है। ४. **शतारित्राम्**=जिसके अरित्र सौ वर्ष तक उत्तमता से कार्य करनेवाले हैं। ऐसी इस नाव पर मैं **स्वस्तये**=उत्तम जीवन व कल्याण के लिए आरुढ़ होऊँ। ऐसी नाव पर आरोहण करके ही मैं संसाररूप 'अशमन्वती नदी' को पार कर सकूँगा।

भावार्थ—यह शरीररूप नाव अत्यन्त निर्दोष होगी तभी यह 'सुनाव' हमें इस संस्मृतिरूप नदी से पार उतारनेवाली होगी।

ऋषिः—विश्वामित्रः। देवता—मित्रावरुणौ। छन्दः—निचृद्गायत्री। स्वरः—षड्जः॥

माधुर्य

आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् । मध्वा रजांसि सुक्रतू॥८॥

१. गतमन्त्र का 'गयःप्लात' सब प्रकार के क्रोधादि को छोड़कर 'विश्वामित्र' =सभी से स्नेह करनेवाला बनता है और प्रार्थना करता है—हे **मित्रावरुणा**=मित्र और वरुण देवो! 'मित्र-स्नेह की देवता है' वरुण' द्वेष-निवारण की। हे स्नेह व द्वेषनिवृत्ति की भावनाओ! नः=हमारे **गव्यूतिम्**=जीवनमार्ग को, इन्द्रियों के प्रचार-क्षेत्र को **घृतैः**=(घृ क्षरणदीप्त्योः) मलों के क्षरण तथा ज्ञान के दीपनों से **उक्षतम्**=सर्वथा सिक्त कर दो। स्नेह व द्वेष निवृत्ति ही वस्तुतः सब मलों के ध्वंस के द्वारा हमें शरीर में नीरोग व मन में निर्मल और प्रसन्न बनाती है तथा हमारे मस्तिष्क को ज्ञानदीप्त करने में सहायक है। २. हे **सुक्रतू**=शोभन कर्मवाले मित्रावरुणो! आप **रजांसि**=(रजः कर्मणि भारत) हमारे सब कर्मों को **मध्वा**=माधुर्य से सिक्त करने की कृपा करो। मित्र व वरुण की आराधना हमारे सब कार्यों के अन्दर माधुर्य का सञ्चार करनेवाली होगी। हमारा आना-जाना, बोलना-चालना सब मधुर होगा तभी तो हमारा 'विश्वामित्र' यह नाम चरितार्थ होगा।

भावार्थ—हमारा जीवनमार्ग घृत=मलक्षरण व ज्ञानदीप्ति से सिक्त हो तथा हमारे सब कर्म माधुर्य को लिये हुए हों।

ऋषिः—वसिष्ठः। देवता—अग्निः। छन्दः—त्रिष्टुप्। स्वरः—धैवतः॥

कर्मव्यापृति

प्र बाहवा सिसृतं जीवसे नऽआ नो गव्यूतिमुक्षतं घृतेन ।

आ मा जनै श्रवयतं युवाना श्रुतं मे मित्रावरुणा हवेमा ॥९॥

१. हे मित्रावरुणा=स्नेह व द्वेषाभाव की भावनाओ! नः=हमारे जीवसे=उत्तम जीवन के लिए बाहवा=हमारी बाहुओं को प्रसिसृतम्=(प्रसारयतम्) गतियुक्त करो, अर्थात् हम स्नेह से प्रेरित होकर, सब प्रकार के द्वेषों से ऊपर उठकर सदा कार्यों में लगे रहें। २. नः=हमारे गव्यूतिम्=प्रचार-इन्द्रिय क्षेत्र को अथवा जीवनमार्ग को घृतेन=मलक्षण व ज्ञानदीप्ति से उक्षतम्=सिक्त करो। हमारे शरीर व मन निर्मल होकर नीरोग तथा प्रसन्न हों, तथा हमारे मस्तिष्क ज्ञान से दीप्त हो उठें। ३. इस प्रकार आप हमारे जीवन को ऐसा सुन्दर बनाइए कि मा=मुझे जने=लोगों में आश्रवयतम्=चारों ओर कीर्तियुक्त कर दीजिए। ४. युवाना=आप मेरे लिए गुणों का मिश्रण करनेवाले तथा अवगुणों को दूर करनेवाले (अमिश्रण) होओ। ५. हे मित्रावरुणा! आप मे=मेरी इमा हवा=इन प्रार्थनाओं को श्रुतम्=सुनिए और मेरे जीवन को सचमुच 'सं मा भद्रेण पृङ्क्तं वि मा पाप्मना पृङ्क्तम्' भद्र से युक्त कीजिए और अभद्र से व पाप से पृथक् कीजिए, इस प्रकार आप मुझे अत्यन्त उत्तम जीवनवाला 'वसिष्ठ' बनाइए।

भावार्थ—उत्तम जीवन के लिए आवश्यक है कि हम सदा कार्यों में लगे रहें। हमारा मार्ग मलशून्य व ज्ञानदीप्तिवाला हो। लोगों में हमारी कीर्ति हो, इसीलिए अभद्र से हम दूर व भद्र के समीप होने का प्रयत्न करें।

ऋषिः—आत्रेयः। देवता—ऋत्विजः। छन्दः—भुरिक्पङ्क्तिः। स्वरः—पञ्चमः॥

विद्वान् 'आत्रेय'

शत्रो भवन्तु वाजिनो हवेषु देवताता मितद्रवः स्वर्काः।

जम्भयन्तोऽहिं वृक्श्रक्षांसि सनेम्यस्मद्युयवन्नमीवाः॥१०॥

१. अब इस अध्याय में समाप्ति तक मन्त्रों का ऋषि 'आत्रेय' है। 'आत्रेय' वह है जो 'अत्रि'—'काम, क्रोध व लोभ' तीनों से रहित है। यह 'आत्रेय' ही वस्तुतः गतमन्त्र का वसिष्ठ है। उत्तम निवासवाला है। यह प्रार्थना करता है कि हवेषु=जब-जब हम पुकारें तब वाजिनः=शक्तिशाली देवताता=(देवान् तन्यन्ति) दिव्य गुणों का विस्तार करनेवाले, मितद्रवः=बड़ी मपी-तुली गतिवाले, प्रत्येक कर्म में युक्त चेष्टावाले, स्वर्काः=(अर्कम् अन्नम्) उत्तम अन्न का सेवन करनेवाले अथवा (अर्क=स्तोत्र) उत्तम स्तोत्रोंवाले, उत्तम स्तवनवाले विद्वान् लोग नः=हमारे लिए शं भवन्तु=शान्ति व सुख के देनेवाले हों। २. अहिम्=(आहन्तीति) हिंसा व घात-पात की वृत्ति को अथवा सर्पवत् कुटिलता को, वृक्म्=(वृक आदाने) लोभवृत्ति को तथा रक्षांसि=अपने रमण के लिए औरों के क्षय की वृत्ति को जम्भयन्तः=नष्ट करते हुए ये अस्मत्=हमसे अमीवाः=रोगों को सनेमि=शीघ्र युयवन्=पृथक् करें। इनके उपदेश हमारे जीवनो में हिंसा के स्थान में प्रेम को, कुटिलता के स्थान में सरलता को, लोभ के स्थान में सन्तोष को, राक्षसीवृत्तियों के स्थान में दैवीवृत्तियों को जन्म देते हुए शरीर व मानस नीरोगता प्राप्त करानेवाले हों। इनके उपदेशों से हम भी इनकी भाँति 'शक्तिशाली, दिव्य गुणों का विस्तार करनेवाले, युक्तचेष्ट तथा उत्तमाहार-सेवी' बनें तो

अवश्य ही कुटिलता-लोभ-हिंसा आदि को छोड़कर पूर्ण आरोग्य का साधन कर पाएँगे और तब सचमुच 'आत्रेय' होंगे-त्रिविध कष्टों से ऊपर उठ जाएँगे।

भावार्थ—विद्वान् का लक्षण है कि वह 'शक्तिशाली, दिव्य वृत्तिवाला, युक्तचेष्ट, सात्त्विक आहारी व उत्तम उपासक' होता है। इनके उपदेश लोगों को अहिंसक, सन्तोषी व यशस्वी बनाते हैं और लोगों को नीरोगता प्राप्त कराते हैं।

ऋषिः—आत्रेयः। देवता—विद्वांसः। छन्दः—निचृत्त्रिष्टुप्। स्वरः—धैवतः॥

मार्गोपदेश

वाजेवाजेऽवत वाजिनो नो धनेषु विप्राऽअमृताऽऋतज्ञाः।

अस्य मध्वः पिबत मादयध्वं तृप्ता यात पथिभिर्देवयानैः॥११॥

१. गतमन्त्र के विद्वानों से ही प्रार्थना करते हैं कि **वाजिनः**=शक्तिशाली व ज्ञानी आप नः=हमारी **वाजे-वाजे**=प्रत्येक संग्राम में **अवत**=रक्षा करनेवाले होओ। आपकी कृपा से हम गतमन्त्र के 'अहि, वृक व राक्षसों' के साथ संग्राम में उनका हिंसन करनेवाले हों। २. हम भी आप की भाँति **धनेषु**=धनों के विषय में **विप्राः**=(वि+प्रा) विशेषरूप से अपना पूरण करनेवाले हों। हम धनों को सदा सुपथ से ही सञ्चित करनेवाले हों। ३. **अमृताः**=हम विषयों के पीछे मरनेवाले न हों, विषय हमारे लिए विषय=बन्धनकारक (षिञ् बन्धने) न रह जाएँ। ४. **ऋतज्ञाः**=हम अपने जीवनो में ऋत को जाननेवाले हों—हमारे जीवनो में मर्यादा हो, यज्ञ हों (ऋत=यज्ञ), अनृत से हम ऊपर उठे हुए हों। ५. इस प्रार्थना के करने पर विद्वान् उपदेश देते हैं कि '**अस्य मध्वः पिबत**'=इस मधु का पान करो। ओषधि-वनस्पतियों के सारभूत सोम (मधु) को तुम अपने जीवन में सुरक्षित करो। सोम का रक्षण तुम्हें **सोम**=परमात्मा-जैसा बनाएगा। ६. इस सोम का पान करके **मादयध्वम्**=हर्ष का अनुभव करो। तुम्हारा जीवन आह्लादमय बने। ७. **तृप्ताः यात**=तुम इस संसार में सदा तृप्त होकर चलो। भूखा व्यक्ति ही निष्करुण व पाप-प्रवृत्त होता है। ८. तुम **देवयानैः पथिभिः**=देवताओं से जाने योग्य मार्गों से चलनेवाले होओ। देवों के तुम अनुयायी बनो। देवों की भाँति ही तुम 'दान, दीपन व द्योतन' वाले होओ। वस्तुतः यही शान्ति-प्राप्ति का मार्ग है।

भावार्थ—हम सोम की रक्षा करें, तृप्त व सन्तुष्ट होकर चलें। सदा प्रसन्न रहें। देवयान-मार्ग पर आक्रमण करें। देवों के ही अनुगामी हों।

ऋषिः—स्वस्त्यात्रेयः। देवता—अग्निः। छन्दः—विराडनुष्टुप्। स्वरः—गान्धारः॥

त्र्यविर्गोः

समिद्धोऽग्निः समिधा सुसमिद्धो वरेण्यः।

गायत्री छन्दऽइन्द्रियं त्र्यविर्गोर्वयौ दधुः॥१२॥

१. प्रस्तुत मन्त्र का ऋषि 'स्वस्त्यात्रेय' है। **सु**=उत्तम **अस्ति**=जीवनवाला **आत्रेय**=विविध कष्टों से दूर, अथवा काम-क्रोध-लोभ से रहित। कामादि से रहित होने के कारण ही वह कष्टों से भी रहित है। इस स्वस्त्यात्रेय के जीवन में **इन्द्रियम्**=प्रत्येक इन्द्रिय की शक्ति को तथा **वयः**=उत्कृष्ट जीवन को **दधुः**=धारण करते हैं। २. कौन धारण करते हैं? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कहते हैं कि **समिधा**=समिधाओं से, यज्ञिय काष्ठों से, **समिद्धः**=अग्निकुण्ड में दीप्त किया हुआ **अग्निः**=अग्नि। एक सद्गृहस्थ प्रतिदिन प्रातः-सायं घर में अग्निहोत्र करता है, '**अग्निं सपर्यतारा नाभिमिव**'=रथनाभि के चारों ओर स्थित अरों की भाँति

अग्निकुण्ड के चारों ओर स्थित होकर, पूजा की भावनावाले होकर, तुम अग्निहोत्र करो। इस अग्निहोत्र से वायुमण्डल का शोधन होता है, रोगकृमियों का संहार होता है और मनुष्य का जीवन नीरोग बनता है। इस नीरोगता से सौमनस्य प्राप्त होता है। एवं, यह समिद्ध अग्नि हमारे लिए उत्कृष्ट जीवन का धारण करनेवाली है। ३. **सुसमिद्धः वरेण्यः**=वह वरणीय प्रभु सोमरक्षा द्वारा सूक्ष्म बुद्धि से हृदयाकाश में दीप्त किया जाता है। उस प्रभु को हम सूक्ष्म बुद्धि द्वारा देख पाते हैं। इस बुद्धि की सूक्ष्मता के लिए ही हमें शरीर में सोम की रक्षा करनी है। यह सुसमिद्ध वरेण्य प्रभु हमारे जीवन को उत्कृष्ट बनाते हैं। ४. **गायत्री छन्दः**=(गयः प्राणः, त्रा=रक्षण) 'प्राणशक्ति के रक्षण की प्रबल इच्छा' हमारे जीवन को उत्कृष्ट बनाती है। प्राणशक्ति के रक्षण की प्रबल भावना से हम 'प्रेय' मार्ग का वरण न करके श्रेय का ही वरण करते हैं। ५. अन्त में **गौः**=ज्ञान की रश्मि हमारे जीवन को उत्कृष्ट बनाती है। वह ज्ञान की रश्मि जोकि **त्र्यविः**=शरीर, मन व बुद्धि तीनों का ही रक्षण करती है अथवा जो हमारे जीवन में धर्म, अर्थ व काम तीनों को लाती है। '**धर्मार्थकामः सममेव सेव्यः**' के अनुसार समानुपात में चलनेवाले धर्मार्थकाम हमारे जीवनो को बड़ा उत्कृष्ट बना देते हैं।

भावार्थ—(क) अग्निहोत्र (ख) प्रभु का वरण (ग) प्राणशक्ति-रक्षण की प्रबल कामना तथा (घ) धर्मार्थकाम तीनों का समसेवन करानेवाली ज्ञानरश्मि—ये हमारी शक्तियों को स्थिर करें तथा जीवन को उत्कृष्ट बनाएँ।

ऋषिः—स्वस्त्यात्रेयः। देवता—विद्वांसः। छन्दः—अनुष्टुप्। स्वरः—गान्धारः॥

दित्यवाट् गौः

तनूनपाच्छुचिब्रतस्तनूपाश्च सरस्वती।

उष्णिहा छन्दऽइन्द्रियं दित्यवाड् गौर्वयो दधुः॥१३॥

१. स्वस्त्यात्रेय के जीवन में **इन्द्रियम्**=प्रत्येक इन्द्रिय की शक्ति को तथा **वयः**=उत्कृष्ट जीवन को, जिस जीवन में अन्त तक कर्मतन्तु का विस्तार होता है, **दधुः**=धारण करते हैं। २. 'कौन धारण करते हैं?' इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कहते हैं कि **तनूनपात्**=(प्राणो वै तनूनपात् स हि तन्वः पाति-ऐ० २।४) प्राण जो **शुचिब्रतः**=पवित्र ब्रतोंवाला है। संक्षेप में वह जीवन जो ब्रतमय है। ब्रती जीवन 'शक्ति' को बढ़ाता है, वह जीवन उत्कृष्ट तो बनता ही है। ३. **च**=और **सरस्वती**=वह ज्ञानाधिदेवता जोकि **तनूपाः**=हमारे शरीरों की रक्षा करनेवाली है। अथवा शक्तियों के विस्तार (तनू) की रक्षा करनेवाली है। ४. **उष्णिहा छन्दः**=(उत् स्निह्यति) उत्कृष्ट स्नेह की भावना भी शक्ति को बढ़ाती है तथा जीवन को उत्कृष्ट बनाती है। संसार में सामान्यतः हीनाकर्षण प्रबल होता है, कोई विरल व्यक्ति ही इस स्नेह को उत्कर्ष की ओर ले-जाता है। जब हमारा स्नेह उत्कृष्ट वस्तुओं के लिए होने लगता है तब यह हमारी शक्ति का रक्षक सिद्ध होता है और हमारे जीवन को उत्कृष्ट बनाता है। ५. **गौः**=ज्ञान की वह रश्मि जोकि **दित्यवाट्** है=(दितेर्भावः कर्म वा दित्यं), अर्थात् जो ज्ञान अविद्यान्धकार को नष्ट करता है, वह निश्चय से हमारे जीवन को उत्कृष्ट बनाता है।

भावार्थ—१. ब्रती जीवन २. शक्तियों की रक्षक ज्ञानाधिदेवता ३. उत्कृष्ट स्नेह तथा ४. अज्ञानान्धकार को नष्ट करनेवाली ज्ञान की किरणें हमारे जीवनो को उत्कृष्ट बनाती हैं तथा प्रत्येक इन्द्रिय को शक्तियुक्त करती हैं।

ऋषिः—स्वस्त्यात्रेयः। देवता—विद्वांसः। छन्दः—विराडनुष्टुप्। स्वरः—गान्धारः॥

पञ्चाविर्गोः

इडाभिरग्निरीड्यः सोमो देवोऽमर्त्यः।

अनुष्टुप् छन्दऽइन्द्रियं पञ्चाविर्गोर्वयो दधुः॥१४॥

१. स्वस्त्यात्रेय के जीवन में निम्न वस्तुएँ इन्द्रियम्=प्रत्येक इन्द्रिय की शक्ति को तथा वयः=अविच्छिन्न कर्मतन्तुवाले जीवन को दधुः=धारण करती हैं। २. सबसे प्रथम तो इडाभिः=सब वेदवाणियों से ईड्यः=स्तुति के योग्य अग्निः=परमात्मा स्तुत्य हैं। इनसे उनका स्तवन करने पर हमारी शक्तियों का हास नहीं होता और हमारा जीवन क्रियामय बनकर उत्कृष्ट बनता है। ३. दूसरे स्थान पर सोमः=सोम है, वीर्यशक्ति है जो देवः=मन के अन्दर दिव्य गुणों को जन्म देनेवाली है तथा अमर्त्यः=मनुष्य को रोगों से न मरने देनेवाली है। यह 'सोम' सुरक्षित होकर शक्ति व उत्कृष्ट जीवन का धारण करता है। ४. तीसरे स्थान पर अनुष्टुप् छन्दः=(अनु स्तौति) प्रत्येक कार्य को करते हुए प्रभु का स्तवन करने की इच्छा है। प्रभु-स्मरणपूर्वक होनेवाले कार्य हमें कभी क्षीणशक्ति नहीं करते और ये कार्य हमारे जीवन को उत्कृष्ट बनाते हैं। ५. अन्त में पञ्चाविः गौः=है, वह ज्ञान की रश्मि है, जो हमारे पञ्चभौतिक शरीर का पूर्ण रक्षण करती है। इससे हमारे पाँचों प्राणों का रक्षण होता है—पाँचों कर्मेन्द्रियों का मार्ग प्रशस्त बनाया जाता है और यह ज्ञानरश्मि हमें पाँचों क्लेशों से बचाती है।

भावार्थ—१. वेदवाणियों से स्तुत्य प्रभु २. दिव्य गुणों को पैदा करनेवाला व रोगों से न मरने देनेवाला सोम ३. प्रभु-स्मरणपूर्वक कार्य करना तथा ४. पाँचों क्लेशों से बचानेवाली ज्ञानरश्मियाँ हममें शक्ति का धारण करें व हमारे जीवन को उत्कृष्ट बनाएँ।

ऋषिः—स्वस्त्यात्रेयः। देवता—विद्वांसः। छन्दः—निचृदनुष्टुप्। स्वरः—गान्धारः॥

त्रिवत्सो गौः

सुबर्हिरग्निः पूषण्वान्स्तीर्णबर्हिरमर्त्यः।

बृहती छन्दऽइन्द्रियं त्रिवत्सो गौर्वयो दधुः॥१५॥

१. स्वस्त्यात्रेय के लिए इन्द्रियम्=प्रत्येक इन्द्रिय की शक्ति को तथा वयः=उत्कृष्ट जीवन को दधुः=धारण करते हैं। कौन? २. सुबर्हिः=(ओषधयो बर्हिः—ऐ० ५।२८) उत्तम ओषधियों का सेवन करनेवाला, अग्निः=उदरस्थ वैश्वानर अग्नि (जाठराग्नि) जो पूषण्वान्=हमारा उत्तम पोषण करता है। वस्तुतः शक्ति व उत्कृष्ट जीवन का बहुत कुछ निर्भर इस जाठराग्नि पर ही है। यदि इस जाठराग्नि को उत्तम सात्त्विक ओषधीय भोजन ही प्राप्त होते रहें तभी शरीर का उत्तम पोषण होता है। ३. स्तीर्णबर्हिः=(पशवो वै बर्हिः—ऐ० २।४ कामः पशुः, क्रोधः पशुः, स्तु=to kill) नष्ट किये हैं काम-क्रोधादि पशु जिसने, ऐसा अमर्त्यः=विषयों के पीछे न मरनेवाला मनुष्य अथवा स्तीर्ण=बिछाई है बर्हिः=कुशा जिसने, ऐसा यज्ञवेदि पर कुशादि को बिछानेवाला अमर्त्यः=रोगों से न मरनेवाला यज्ञशील पुरुष, ४. बृहती छन्दः=(बृहि वृद्धौ) निरन्तर बढ़ने की प्रबल भावना, तथा ५. गौः=वह ज्ञान की रश्मि जोकि त्रिवत्सः=(त्रीन् वदति) 'प्रकृति, जीव, परमात्मा' तीनों का ज्ञान देती है। इन तीनों को समझने पर हमारा जीवन-मार्ग निश्चय से प्रशस्त होता है और हम उत्कृष्ट जीवनवाले

बनकर अपनी शक्ति का ठीक रक्षण कर पाते हैं।

भावार्थ—१. वानस्पतिक पौष्टिक भोजन २. वासना-विनाश व यज्ञशील जीवन ३. निरन्तर आगे बढ़ने की इच्छा, ४. प्रकृति, जीव व परमात्मा का ज्ञान देनेवाली ज्ञानरशियाँ हमारे जीवन को सशक्त व उत्कृष्ट बनाती हैं।

ऋषिः—स्वस्त्यात्रेयः। देवता—विद्वांसः। छन्दः—अनुष्टुप्। स्वरः—गान्धारः॥

तुर्यवाड् गौः

दुरो देवीर्दिशो महीर्ब्रह्मा देवो बृहस्पतिः।

पङ्क्तिश्छन्दः इहेन्द्रियं तुर्यवाड् गौर्वयो दधुः॥१६॥

१. देवीः=उत्तम रूप से गति करनेवाले, अपने-अपने कार्य को उत्तमता से करनेवाले दुरः='मुख-पायु-उपस्थ व ब्रह्मरन्ध्र' आदि द्वार इह=इस मानव-जीवन में इन्द्रियम्=शक्ति को तथा वयः=उत्कृष्ट जीवन को दधुः=धारण करते हैं। 'मुख व पायु' का कार्य ठीक होने पर शरीर का स्वास्थ्य सिद्ध होता है तथा उपस्थ व ब्रह्मरन्ध्र का कार्य ठीक होने पर अध्यात्म-उन्नति व मानस स्वास्थ्य, अर्थात् उत्कृष्ट जीवन प्राप्त होता है। २. मही दिशः=ये महनीय दिशाएँ भी हमारे जीवनों को उत्कृष्ट बनाती हैं। 'प्राची' (प्र अञ्च्) हमें आगे बढ़ने को कहती है तो प्रतीची (प्रति अञ्च्) इन्द्रियों का विषयों से प्रत्याहार करने का संकेत करती है, उदीची=ऊपर उठाती है तो अवाची=(अव अञ्च्) नम्रता का उपदेश दे रही है। एवं, ये भावनाएँ निश्चितरूप से हमारे जीवनों को श्रेष्ठ बनाती हैं। ३. ब्रह्मा देवः=इस संसाररूपी क्रीड़ा को करनेवाला ब्रह्मदेव हमारे जीवन को उत्कृष्ट बनाता है। 'ब्रह्म ही निर्माण करनेवाले हैं' उनके अनुकरण पर हम भी निर्माण करेंगे तो जीवन में आनन्द का अनुभव करेंगे। ४. बृहस्पतिः=देवताओं को भी ज्ञान देनेवाले ये बृहस्पति हैं, ब्रह्मणस्पति हैं, चारों वेदों का ज्ञान वहीं सुरक्षित है। वे प्रभु ही इस वेदज्ञान के उत्तम स्रोत हैं, उस प्रभु से हमारा मेल होता है तो यह ज्ञान हममें भी प्रवाहित होता है। इस ज्ञान से हमारी वासनाएँ नष्ट होती हैं और हमारी इन्द्रियों की शक्ति क्षीण नहीं होती तथा हमारा जीवन उत्कृष्ट होता है। ५. पङ्क्तिः छन्दः=(पङ्क्तिरूर्ध्वादिक्-श० ८।३।१।१२) हमारी यह प्रबल इच्छा हो कि हम 'ऊर्ध्वा दिक्' को प्राप्त करनेवाले बनें। इसके अधिपति बनकर हम स्वयं बृहस्पति बन जाएँ। सर्वोच्च दिशा का अधिपति बनने की प्रबल कामना हमारी भावनाओं को हीन नहीं बनने देती और इस प्रकार हमारी शक्ति क्षीण नहीं होती। ६. गौः=वह ज्ञानरश्मि भी हमारी शक्ति व उत्कृष्ट जीवन का कारण बनती हैं जो तुर्यवाट्=तुर्य अवस्था का वहन करनेवाली होती है। 'जागरित-स्वप्न-सुषुप्ति' से ऊपर समाधिजन्य तुरीयावस्था 'पूर्ण एकाग्रता' की अवस्था है। ज्ञान मनुष्य को इस अवस्था के अनुकूल बनाता है। इस अवस्था में पहुँचने पर शक्ति के हास व जीवन की हीनता का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता।

भावार्थ—१. दिव्य गुणोंवाले मुख आदि द्वार २. महनीय संकेत देनेवाली दिशाएँ ३. निर्माण का कर्त्ता ब्रह्मदेव ४. देवगुरु बृहस्पति ५. ऊर्ध्वादिक् का आधिपत्य प्राप्त करने की इच्छा ६. और तुरीयावस्था (पूर्ण एकाग्रता) को प्राप्त करानेवाली ज्ञानरशियाँ हममें इन्द्रियों की शक्ति को तथा उत्कृष्ट जीवन को धारण करें।

ऋषिः—स्वस्त्यात्रेयः। देवता—विश्वेदेवाः। छन्दः—निचृदनुष्टुप्। स्वरः—गान्धारः॥

पष्ठवाङ् गौः

उषे यद्ही सुपेशसा विश्वेदेवाऽमर्त्याः।

त्रिष्टुप् छन्दऽइहेन्द्रियं पष्ठवाङ् गौर्वयो दधुः॥१७॥

१. यद्ही=(महत्यौ) महिमा से सम्पन्न सुपेशसा=उत्तम रूपवाली उषे=(द्विवचनाद् दिनं रात्रिं च-म०) दोनों सन्ध्याकाल (twilights) इह=इस मानव-जीवन में इन्द्रियम्=इन्द्रियों की शक्ति को तथा वयः=उत्कृष्ट जीवन को दधुः=धारण करें। दोनों सन्ध्याकाल हमें 'सूर्य व चन्द्र' के मेल का ध्यान कराते हैं और बोध देते हैं कि तुम्हारा मस्तिष्क सूर्य के समान हो तो तुम्हारा हृदय चन्द्रमा के समान हो। सूर्य के समान देदीप्यमान ज्ञान तथा चन्द्र के समान आह्लादमय मन दानों ही अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं तथा ये दोनों जीवन को अत्यन्त सुन्दर रूप प्राप्त कराते हैं। २. विश्वेदेवाः=सब दिव्य गुण जो अमर्त्याः=मनुष्य को मृत्यु के मार्ग से बचाते हैं, ये भी 'इन्द्रिय और वयः' के धारण करानेवाले हैं। ३. त्रिष्टुप् छन्दः='काम, क्रोध व लोभ' तीनों को रोकने की प्रबल इच्छा हमारे जीवन को उत्कृष्ट बनाती है। इनके अतिरिक्त ४. गौः=ज्ञानरश्मि जो पष्ठवाङ्=(पष्ठं भारं वहति-उ०) कार्यभार को धारण करती है। ज्ञान जो क्रिया को उत्तमता से करनेवाला होता है, वह मानव-जीवन को सशक्त व उत्तम बनाता है।

भावार्थ—जीवन को सूर्य व चन्द्र के समान बनाने का उपदेश देनेवाला उषःकाल २. विषयों के पीछे न मरने देनेवाले दिव्य गुण ३. 'काम, क्रोध व लोभ' को रोकने की प्रबल कामना तथा ४. कार्यभार को सुचारुरूपेण वहन करनेवाला ज्ञान हमारे जीवनो को सशक्त व उत्कृष्ट बनाएँ।

ऋषिः—स्वस्त्यात्रेयः। देवता—विश्वेदेवाः। छन्दः—निचृदनुष्टुप्। स्वरः—गान्धारः॥

अनड्वान् गौः

दैव्या होतारा भिषजेन्द्रेण सयुजा युजा।

जगती छन्दऽइन्द्रियमनड्वान् गौर्वयो दधुः॥१८॥

१. 'स्वस्त्यात्रेय' के जीवन में इन्द्रियम्=शक्ति को तथा वयः=उत्कृष्ट जीवन को दधुः=धारण करते हैं। कौन? २. प्रथम दैव्या होतारा=(प्राणापानौ वै दैव्या होतारा-ऐ० २।४) प्राणापान जो भिषजा=सब व्याधियों के चिकित्सक हैं और वस्तुतः व्याधियों को आने ही न देनेवाले हैं। ३. दूसरे स्थान में इन्द्रेण सयुजा=आत्मा के साथ मिलकर कार्य करनेवाले युजा=(परस्परेण युक्तौ) परस्पर जुड़े-से हुए ये मन और बुद्धि हमारे जीवनो को उत्कृष्ट बनानेवाले हैं। इनका उत्कर्ष ही जीवन का उत्कर्ष है। ४. जगती छन्दः=लोकहित की प्रबल भावना भी हमें भोगमय जीवन से ऊपर उठाने में बड़ी सहायक होती है। ५. वह गौः=ज्ञान की रश्मि भी हमें उत्कर्ष की ओर ले-जाती है जो अनड्वान्=इस जीवन-शकट का वहन करती है। ज्ञान की रश्मि जीवन की गाड़ी को उसी प्रकार सुन्दरता से ले-चलती है जैसे बैल भार की गाड़ी को खैच ले-चलता है।

भावार्थ—१. प्राणापान जो दैव्य=देव की ओर ले-जानेवाले हैं तथा होतारा=सदा दानपूर्वक अदन करनेवाले हैं, सब इन्द्रियों को शक्ति देते हुए अपना कार्य करने में लगे रहते हैं। २. जीवात्मा के सदा के साथी मन व बुद्धि ३. लोकहित की प्रबल भावना ४.

जीवन की गाड़ी को उत्तमता से वहन करनेवाली ज्ञानरश्मियाँ हमें सशक्त व सुन्दर जीवनवाला बनाएँ।

ऋषिः—स्वस्त्यात्रेयः। देवता—विश्वेदेवाः। छन्दः—अनुष्टुप्। स्वरः—गान्धारः॥

धेनुगौः

तिस्रऽइडा सरस्वती भारती मरुतो विशः।

विराट् छन्दऽइहेन्द्रियं धेनुगौर्न वयो दधुः॥११॥

१. इडा सरस्वती भारती तिस्रः=श्रद्धा, ज्ञानाधिदेवता तथा वाणी—ये तीन, तथा २. मरुतो विशः=(मितराविणः, महद् द्रवन्ति इति वा—नि० ११।१३) कम बोलनेवाले, परन्तु खूब कार्य करनेवाले, मनुष्य अपने उदाहरण से हमारे जीवनो को उत्कृष्ट बनाएँ। ३. विराट् छन्दः=हमारे अन्दर भी 'मरुतो विशः' की भाँति अपने जीवनो को विशिष्ट रूप से दीप्त बनाने की कामना हो। यह जीवनो को दीप्त बनाने की कामना हमें ऊँचा उठाती है। हम अपनी शक्ति को भोगविलास में नष्ट नहीं होने देते और इस प्रकार हमारा जीवन उत्कृष्ट बनता है। ४. धेनुः गौः न=(नकारश्चार्थे—उ०) ज्ञान-दुग्ध का पान करानेवाली ज्ञान-रश्मियाँ इह=इस मानव-जीवन में इन्द्रियम्=शक्ति को तथा वयः=उत्कृष्ट जीवन को हममें दधुः=धारण करें। सारी अवनति का मूल अज्ञान है, ज्ञान से ही जीवन उन्नत होता है।

भावार्थ—१. श्रद्धा, ज्ञान व पवित्र वाणी २. मितभाषी पुरुष ३. विशेषरूप से चमकने की प्रबल कामना तथा ४. ज्ञानदुग्ध को पिलानेवाली ज्ञानरश्मियाँ हमारे जीवन को उत्कृष्ट बनाएँ।

ऋषिः—स्वस्त्यात्रेयः। देवता—विश्वेदेवाः। छन्दः—अनुष्टुप्। स्वरः—गान्धारः॥

उक्षा गौः

त्वष्टा तुरीपोऽअद्भुतऽइन्द्राग्नी पुष्टिवर्धना।

द्विपदा छन्दऽइन्द्रियमुक्षा गौर्न वयो दधुः॥२०॥

१. हममें इन्द्रियम्=इन्द्रियों की शक्ति को तथा वयः=उत्कृष्ट जीवन को दधुः=धारण करें। कौन? २. पहले तो त्वष्टा=(त्वष्टा तूर्णमश्नुते, त्विषतेर्वा स्याद् दीप्तिकर्मणः, त्वक्षतेर्वा स्यात् करोतिकर्मणः—नि० ८।१४) शीघ्रता से कार्यों में व्याप्त होनेवाला, क्रियाशीलता के कारण चमकनेवाला तथा इसी क्रियाशीलता से बुद्धि को तीव्र (सूक्ष्म) करनेवाला, तुरीः=जो (तूर्णम् आप्नोति) शीघ्र ही अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है, इसलिए अद्भुतः=आश्चर्यजनक व महान् होता है। यह व्यक्ति अपने उदाहरण से हममें भी शक्ति व उत्कृष्ट जीवन को स्थापित करे। ३. पुष्टिवर्धना=मेरे शरीर व आत्मा की पुष्टि के बढ़ानेवाले इन्द्राग्नी=इन्द्र व अग्निदेव मुझे सशक्त व उत्कृष्ट जीवनवाला बनाएँ। 'इन्द्र' बल का प्रतीक होकर मुझे शारीरिक दृष्टिकोण से उन्नत करता है तो 'अग्नि' प्रकाश व दोषदहन का प्रतीक होकर मुझे अध्यात्म-उन्नति प्राप्त कराता है। मैं अपने जीवन में इन्द्र व अग्नि दोनों तत्त्वों को बढ़ानेवाला बनूँ। ४. द्विपदा छन्दः=(द्वे पद्यते ज्ञानं कर्म च) ज्ञान व कर्म दोनों को प्राप्त करने की कामना मुझे उत्कृष्ट जीवनवाला करे। हमारा जीवन यदि पक्षिरूप है तो ज्ञान और कर्म उसके दो पंख हैं। दोनों पंखों के ठीक होने पर ही हम ऊँचा उठ सकेंगे। ५. न=इन तीन के अतिरिक्त उक्षा गौः=सब सुखों का सिञ्चन करनेवाली ज्ञानरश्मियाँ (नकारश्चार्थे) हममें शक्ति व अविच्छिन्न कर्मतन्तुवाले जीवन को धारण करें।

संसार में सब कष्टों का मूल अविद्या है—विद्या ही सब सुखों का सिञ्चन करनेवाली है।

भावार्थ—१. क्रियाशीलता से दीप्त व महापुरुष २. बल व प्रकाश के तत्त्व ३. ज्ञान व कर्म दोनों के अपनाने की प्रबल कामना तथा ४. सुखों का सिञ्चक ज्ञान हमें सशक्त व उत्कृष्ट जीवनवाला बनाएँ।

ऋषिः—स्वस्त्यात्रेयः। देवता—विश्वेदेवाः। छन्दः—अनुष्टुप्। स्वरः—गान्धारः॥

वशा वेहत्

शमिता नो वनस्पतिः सविता प्रसुवन् भगम् ।

ककुप् छन्दऽइहेन्द्रियं वशा वेहद्वयो दधुः॥२१॥

१. वनस्पतिः=वानस्पतिक भोजन जो नः शमिता=हमारे मन को शान्त करनेवाला है, अर्थात् जिस वानस्पतिक भोजन के परिणामरूप हमारे जीवन में क्रोध आदि भावनाओं का प्राबल्य नहीं होता तथा २. भगम् प्रसुवन्=ऐश्वर्य को जन्म देनेवाली सविता=निर्माण की देवता, अर्थात् प्रतिक्षण निर्माणात्मक कार्यों में लगे रहने की भावना ३. ककुप् छन्दः=(ककुप्=summit) शिखर पर पहुँचने की इच्छा ४. वशा=सब इन्द्रियों को वश में करने की वृत्ति अथवा वशा वन्ध्या गौ=इस प्रकृति को अपने लिए वशा के समान समझना, अर्जित सब धन को परार्थ में विनियुक्त करना, वेहद्=(गर्भोपधतिनी) सब बुराइयों को मूल में ही (गर्भ में ही) नष्ट करने की वृत्ति (Nip the evil in the bud), ये सब बातें इह=हमारे मानव-जीवन में इन्द्रियम्=प्रत्येक इन्द्रिय की शक्ति को तथा वयः=उत्कृष्ट जीवन को दधुः=धारण करें।

भावार्थ—इन्द्रियों की शक्ति के लिए तथा उत्कृष्ट जीवन के लिए आवश्यक है कि हम १. शान्ति देनेवाले वानस्पतिक भोजन का प्रयोग करें। २. निर्माणात्मक कार्यों में लगने के द्वारा ऐश्वर्यवृद्धि करनेवाले हों। ३. हममें शिखर तक पहुँचने की प्रबल कामना हो। ४. इन्द्रियों को वश में करें, प्राकृतिक भोगों व धनों को अपने लिए 'बन्ध्या गौ' के समान समझें, हमारे ये सब कार्य परार्थ के लिए हों। ५. बुराइयों को हम मूल में ही विनष्ट करनेवाले बनें।

ऋषिः—स्वस्त्यात्रेयः। देवता—विद्वांसः। छन्दः—अनुष्टुप्। स्वरः—गान्धारः॥

ऋषभो गौः

स्वाहा यज्ञं वरुणः सुक्षत्रो भेषजं करत् ।

अतिच्छन्दाऽइन्द्रियं बृहदृषभो गौर्वयो दधुः॥२२॥

१. स्वाहा यज्ञम्=(स्व+हा) स्वार्थ त्यागवाला यह यज्ञ तथा २. सुक्षत्रः=उत्तम क्षत-त्राणवाला, घावों से बचानेवाला वरुणः=द्वेष-निवारण की देवता भेषजं करत्=औषध का काम करती है, अर्थात् यज्ञ का करना और ईर्ष्या-द्वेषादि का अभाव ये मनुष्य को शारीरिक व मानस क्षतों से बचाते हैं। यज्ञ से सामान्यतः शरीर व्याधिशून्य होता है और द्वेषनिवारण से मन स्वस्थ होता है। ३. अतिच्छन्दाः=औरों को लांघ जाने की प्रबल भावना (अतीत्य गच्छति) तथा ४. बृहत्=(बृहि वृद्धौ) वृद्धि की कारणभूत ऋषभः=(ऋष गतौ) कर्म में प्रवृत्त करनेवाली गौः=ज्ञान की रश्मियाँ इन्द्रियम्=प्रत्येक इन्द्रिय के सामर्थ्य को तथा वयः=उत्कृष्ट जीवन को दधुः=धारण करते हैं।

भावार्थ—इन्द्रियों की शक्ति तथा उत्कृष्ट जीवन के लिए आवश्यक है कि १. हममें

स्वार्थ-त्यागरूप यज्ञ की भावना और मानस आघातों से बचानेवाला द्वेषाभाव=प्रेम प्राप्त हो २. हममें औरों को आगे लाँघ जाने की भावना हो। ३. हमें वह ज्ञानरश्मि प्राप्त हो जो हमारी वृद्धि का कारण बने और हमें क्रियाशील बनाए।

ऋषिः-स्वस्त्यात्रेयः। देवता-रुद्राः। छन्दः-भुरिगनुष्टुप्। स्वरः-गान्धारः॥

वसवः (वयो दधुः)

वसन्तेनऽऋतुना देवा वसवस्त्रिवृता स्तुताः।

रथन्तरेण तेजसा हविरिन्द्रे वयो दधुः॥२३॥

१. इन्द्रे=इन्द्रियों के अधिष्ठाता जितेन्द्रिय पुरुष में हविः=दानपूर्वक अदन की वृत्ति को तथा वयः=उत्कृष्ट जीवन को दधुः=धारण करते हैं। कौन? २. वसवः देवाः=वसुदेव। चौबीस वर्षपर्यन्त आचार्य के समीप निवास करके उस उत्तम ज्ञान को प्राप्त करनेवाले जो ज्ञान उनके निवास को उत्तम बनानेवाला है। ये वसुदेव ३. वसन्तेन ऋतुना स्तुताः=वसन्त ऋतु से स्तुत होते हैं, जैसे वसन्त ऋतु में चारों ओर फूल खिले होते हैं और सौन्दर्य-ही-सौन्दर्य दृष्टिगोचर होता है, इसी प्रकार इनके जीवन में ज्ञान-विज्ञानों के पुष्प विकसित होकर इनके जीवन को सुन्दर बनाते हैं। ४. ये वसुदेव त्रिवृता स्तुताः=त्रिवृत से स्तुत होते हैं। (त्रिषु वर्तते) 'धर्म, अर्थ, काम' तीनों में समानरूप से वर्तने के कारण इनकी स्तुति होती है। ये धनप्रधान जीवनवाले होते हुए भी धर्मपूर्वक धन कमाते हैं और संसार के उचित आनन्दों को उस धन से प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। इस धर्मार्थकाम तीनों में वर्तन के कारण ही ये ५. रथन्तरेण तेजसा=(युक्ताः) उस तेज से युक्त होते हैं जिस तेज के कारण ये शरीररूप रथ से इस 'अश्मन्वती नदी' (भवसागर) को तैर जाते हैं।

भावार्थ- 'वसु' देव वे हैं जिनके जीवन में वसन्तऋतु के समान ज्ञान-विज्ञान के पुष्प खिले होते हैं, जो धर्मार्थकाम का समसेवन करते हैं, जो शरीररूप रथ से इस अश्मन्वती नदी को तैर जानेवाले तेज से युक्त होते हैं। ये 'वसु' देव इन्द्र में हवि व वयः का धारण करें, अर्थात् जितेन्द्रिय पुरुष को त्यागपूर्वक खानेवाला व उत्कृष्ट जीवनवाला बनाएँ।

ऋषिः-स्वस्त्यात्रेयः। देवता-विश्वेदेवाः। छन्दः-अनुष्टुप्। स्वरः-गान्धारः॥

रुद्राः

ग्रीष्मेणऽऋतुना देवा रुद्राः पञ्चदशे स्तुताः।

बृहता यशसा बलहविरिन्द्रे वयो दधुः॥२४॥

१. इन्द्रे=इन्द्रियों के अधिष्ठाता जितेन्द्रिय पुरुष में बलम्=शक्ति को हविः=त्यागपूर्वक अदन को तथा वयः=उत्कृष्ट जीवन को दधुः=धारण करते हैं। कौन? २. रुद्राः देवाः=(रुद्रदेव) जिन्होंने ४४ वर्षपर्यन्त आचार्यों के समीप रहकर उस ज्ञान को प्राप्त किया है जो ज्ञान उनको रुद्र बनाता है (रोरुयमाणो द्रवति) निरन्तर प्रभुनाम स्मरण करते हुए यह वासनाओं पर आक्रमण करनेवाला बनता है। ३. ये 'रुद्र' देव ग्रीष्मेण ऋतुना स्तुताः=ग्रीष्मऋतु से स्तुत होते हैं। जैसे ग्रीष्मऋतु प्रचण्ड सूर्य की किरणों से युक्त है, इसी प्रकार ये रुद्र ज्ञान की तीव्र किरणों से युक्त होते हैं। इन ज्ञान की किरणों की प्रचण्डता में मानस मल भस्मसात् हो जाते हैं और ये रुद्रदेव ४. पञ्चदशे स्तुताः=पाँच ज्ञानेन्द्रियों, पाँच कर्मेन्द्रियों व पाँच प्राणों के पन्द्रह समूह के निमित्त स्तुत होते हैं। इनकी सब इन्द्रियाँ व प्राण ये सब खूब निर्मल व सशक्त होते हैं। ५. इस प्रकार अपने इस पञ्चदशक को सुन्दर बनाकर ये

बृहता यशसा=सदा बढ़ते हुए यश से युक्त होते हैं।

भावार्थ—रुद्रदेव वे हैं जिनके जीवन में ग्रीष्मऋतु का प्रचण्ड तेज विद्यमान है। इस तेजसे इनकी इन्द्रियाँ व प्राण निर्मल बने हैं और ये बड़े यशस्वी होते हैं। ये रुद्रदेव इन्द्र में बल, हवि (त्यागपूर्वक अदन) तथा उत्कृष्ट जीवन को धारण करते हैं।

ऋषिः—स्वस्त्यात्रेयः। देवता—इन्द्रः। छन्दः—अनुष्टुप्। स्वरः—गान्धारः॥

आदित्याः

वर्षाभिर्ऋतुनादित्या स्तोमे सप्तदशे स्तुताः।

वैरूपेण विशौजसा हविरिन्द्रे वयो दधुः॥२५॥

१. इन्द्रे=इन्द्रियों के अधिष्ठाता जितेन्द्रिय पुरुष में हविः=त्यागपूर्वक अदन को तथा वयः=उत्कृष्ट जीवन को दधुः=धारण करते हैं। कौन? २. आदित्या=आदित्यदेव, जिन्होंने ४८ वर्षपर्यन्त आचार्यों के समीप रहकर सब आदान करने योग्य विज्ञानों व गुणों का ग्रहण किया है (आदानात् आदित्या) जैसेकि मेघ जल का आदान करते हैं। ३. अब ये आदित्य वर्षाभिः ऋतुना=वर्षाऋतु से स्तुताः=स्तुत होते हैं। वर्षाऋतु में मेघ चारों ओर जल की वृष्टि करके लोगों के सन्ताप को हरते हैं। ये आदित्यदेव भी चारों ओर ज्ञानजल की वर्षा करते हुए लोगों के कष्टों का निवारण करते हैं। ४. और सप्तदशे स्तोमे स्तुताः=सत्रह तत्त्वों से बने हुए समूह के निमित्त स्तुत होते हैं। ये सत्रह तत्त्वों से बना हुआ शरीर ही सूक्ष्मशरीर है। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच प्राण तथा मन और बुद्धि ये सत्रह तत्त्व मिलकर यह सूक्ष्मशरीर बना है। 'आदित्य' देव अपने इस सूक्ष्मशरीर के कारण निरन्तर प्रशंसित होते हैं। ५. इस सूक्ष्मशरीर को अच्छा बनाने के कारण ही ये आदित्य वैरूपेण विशा ओजसा=विशिष्ट रूपवाली सन्तान से और ओज से अथवा विशिष्ट रूपवाले तथा लोगों के हृदयों में प्रवेश करनेवाले, उनपर प्रभाव डालनेवाले तेज से युक्त होते हैं।

भावार्थ—आदित्यदेव वे हैं जो वर्षाऋतु के समान शान्ति देनेवाले ज्ञानजल को बरसाते हैं, सूक्ष्मशरीर को सुन्दर बनाने से स्तुत होते हैं और विशिष्ट रूपवाले प्राभाविक ओजसे युक्त हैं। ये इन्द्र में त्यागपूर्वक अदन की भावना को तथा उत्कृष्ट जीवन को धारण करते हैं।

ऋषिः—स्वस्त्यात्रेयः। देवता—विश्वेदेवाः। छन्दः—विराड्बृहती। स्वरः—मध्यमः॥

ऋभवः

शारदेन ऋतुना देवाऽएकविंशऽऋभवः स्तुताः।

वैराजेन श्रिया श्रियःहविरिन्द्रे वयो दधुः॥२६॥

१. इन्द्रे=शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले जितेन्द्रिय पुरुष में श्रियम्=श्री को, हविः=त्यागपूर्वक अदन की वृत्ति को तथा वयः=उत्कृष्ट जीवन को दधुः=धारण करते हैं। कौन? २. ऋभवः देवाः=वे देव जो ऋभु नामवाले हैं (मेधाविनाम—नि० ३।१५, उरु भान्ति, ऋतेन भान्ति, ऋतेन भवन्तीति वा—नि० ११।१६) मेधावी हैं, ज्ञान-ज्योति से खूब चमकते हैं, ऋत से देदीप्यमान होते हैं अथवा सदा ऋत के साथ रहते हैं। ये देव ३. शारदेन ऋतुना स्तुताः=शरद् ऋतु से स्तुत होते हैं। जैसे शरद् ऋतु में ठीक प्रकार से अन्नों का परिपाक होता है, उसी प्रकार इन देवों में भी ज्ञान का परिपाक होता है। जैसे शरद् ऋतु में जल निर्मल हो जाता है, इसी प्रकार इनका मन भी निर्मल होता है। जैसे इस ऋतु में पत्ते शीर्ण हो जाते हैं, उसी प्रकार ये भी वासनाओं व रोगों को शीर्ण करनेवाले होते हैं।

४. ये देव **एकविंशे स्तुताः**='वे त्रिषप्ताः' मन्त्र के अनुसार शरीर को धारण करनेवाले इन इक्कीस बलों से युक्त होते हैं। इन इक्कीस शक्तियों के कारण इनकी सर्वत्र स्तुति होती है और ५. **वैराजेन श्रिया श्रियम्**=ये विशेषरूप से चमकनेवाली श्री से युक्त होते हैं। इनकी आकृति ही विशेषरूप से प्रभाव डालनेवाली होती है।

भावार्थ—ऋभुदेव वे हैं जोकि शरद् ऋतु के समान ज्ञानरूप अन्न के परिपाकवाले होते हैं, शरीर की इक्कीस-की-इक्कीस शक्तियों का विकास कर पाते हैं और विशिष्ट दीप्तिवाली श्री से युक्त होते हैं। ये इन्द्र में 'श्री हवि व वयस्, उत्कृष्ट जीवन' का धारण करें।

ऋषिः—आत्रेयः। देवता—विद्वांसः। छन्दः—भुरिगनुष्टुप्। स्वरः—गान्धारः॥

मरुतः

हेमन्तेनऽऋतुना देवास्त्रिणवे मरुत स्तुताः।

बलेन शक्वरीः सहो हविरिन्द्रे वयो दधुः॥२७॥

१. **इन्द्रे**=इन्द्रियों की शक्ति का उपचय करके इन्द्र बननेवाले पुरुष में **सहः**=बल को, **हविः**=त्यागपूर्वक अदन को तथा **वयः**=उत्कृष्ट जीवन को **दधुः**=धारण करते हैं। कौन? २. **मरुतः देवाः**=मरुत् देव। (मरुत् इति ऋत्विङ्नाम—नि०२।१९, मितराविणः, मरुद् द्रवन्ति—नि० ११।१३) जो ऋत्विज हैं, ऋतु-ऋतु में यजन करनेवाले हैं, कम बोलनेवाले हैं और खूब क्रियाशील हैं। ३. **वस्तुतः** इसी कारण **हेमन्तेन ऋतुना स्तुताः**=हेमन्त ऋतु से ये स्तुत होते हैं। हेमन्त ऋतु उपचय की ऋतु होती है। कम बोलने व खूब क्रियाशील होने से इन मरुतों की शक्ति का भी उपचय होता है। ४. इस प्रकार शक्ति के उपचय के कारण ये **त्रिणवे स्तुताः**=त्रिगुणित नौ, अर्थात् सत्ताईस से स्तुत होते हैं। शरीर में नवद्वार हैं '**अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या**'। ये नवद्वार कर्मोपासना व ज्ञानरूप व्यवहार में तीन प्रकार से प्रवृत्त होते हैं और 'त्रिणव' कहलाते हैं। उदाहरण के लिए हम मुख से शब्द बोलनारूप कर्म करते हैं, प्रणवजप द्वारा प्रभु का उपासन करते हैं और ज्ञान की वाणियों के उच्चारण से ज्ञान को बढ़ाते हैं। एवं, नवद्वार कर्मोपासना व ज्ञान में लगे होकर 'त्रिणव' हो जाते हैं। मरुत इन 'त्रिणव' के कारण प्रशंसनीय होते हैं। ५. और **बलेन शक्वरीः**=बल के साथ प्रत्येक अङ्ग को शक्तियुक्त करते हैं। वैदिक भाषा में ये 'शक्वरपृष्ठ' से युक्त होते हैं। इनका अङ्ग-प्रत्यङ्ग कार्यभार को वहन करने में सशक्त होता है।

भावार्थ—मरुतदेव वे हैं जो हेमन्तऋतु की भाँति सब शक्तियों के उपचयवाले होते हैं, जिनके कर्मज्ञानोपासना में प्रवृत्त नवद्वार प्रशंसनीय होते हैं और जिनका अङ्ग-प्रत्यङ्ग बल से सशक्त बनता है। ये इन्द्र में 'बल, हवि व वयस्=उत्कृष्ट जीवन' को धारण करते हैं।

ऋषिः—स्वस्त्यात्रेयः। देवता—विश्वेदेवाः। छन्दः—भुरिगनुष्टुप्। स्वरः—गान्धारः॥

अमृता देवाः

शैशिरेणऽऋतुना देवास्त्रयस्त्रिःशुऽमृता स्तुताः।

सत्येन रेवतीः क्षत्रःहविरिन्द्रे वयो दधुः॥२८॥

१. **इन्द्रे**=(इन्द्रवे द्रवति) परमैश्वर्य की प्राप्ति के लिए गति करनेवाले इन्द्र में **क्षत्रम्**=क्षतों से त्राण करनेवाले बल को, **हविः**=त्यागपूर्वक अदन को तथा **वयः**=उत्कृष्ट

जीवन को दधुः=धारण करते हैं। कौन? २. अमृताः देवाः=विषय-वासनाओं के पीछे न मरनेवाले और अतएव रोगों से आक्रान्त न होनेवाले देव। जो देव ३. शैशिरेण ऋतुना=(शम्नातेर्वा शृणातेर्वा-नि० २।१९) सब वासनाओं को शीर्ण करके शान्ति प्राप्त करके अपने जीवन में शिशिरऋतु को ला पाये हैं। ४. इस वासना की शीर्णता व शान्ति के कारण ही त्रयस्त्रिंशो स्तुताः=ये तेतीस दिव्य गुणों के निमित्त स्तुत हुए हैं। इनके मस्तिष्करूप द्युलोक, हृदयरूप अन्तरिक्षलोक तथा शरीररूप पृथिवीलोक में ग्यारह-ग्यारह करके तेतीस देवों का निवास हुआ है और इस प्रकार इनका यह शरीर सचमुच 'देवानां पूः'=देवनगरी बन गया है। ५. ये अमृतदेव इस संसार में सत्येन रेवतीः=सत्य से रयिधनवाले हुए हैं। ये सदा सत्यमार्ग से धन का अर्जन करते हैं-'रेवती' होते हैं, वैदिक भाषा में 'रैवतपृष्ठ' से स्तुत होते हैं। इनका आधार निर्धनतावाला नहीं होता। इस धन के साथ सत्य को जोड़ने से ही वस्तुतः ये संसार में अमृत बने हैं।

भावार्थ—अमृतदेव वे हैं जो वासनाओं को शीर्ण करके शान्ति धारण से अपने जीवन में शिशिर ऋतु को लाये हैं, तेतीस दिव्य गुणों को धारण करनेवाले बने हैं और जिन्होंने सत्य से धन का अर्जन किया है।

ऋषिः—स्वस्त्यात्रेयः। देवता—अग्न्यश्वीन्द्रसरस्वत्याद्या लिङ्गोक्ताः। छन्दः—निचृदष्टिः।

स्वरः—मध्यमः॥

अग्नि-यजन

होता यक्षत्समिधाग्निमिडस्पदे ऽश्विनेन्द्रः सरस्वतीमजो धूम्रो न गोधूमैः कुवलैर्भेषजं मधु शष्यैर्न तेजऽइन्द्रियं पयः सोमः परिस्त्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतयजः॥ २९॥

१. गतमन्त्रों में (२३ से २८ तक) हवि का आख्यान है। उस हवि के आख्यान से यह होता=दानपूर्वक अदन करनेवाला बना है। यह होता=दानपूर्वक अदन करनेवाला इडस्पदे=(इडा=श्रद्धा अथवा वेदवाणी) श्रद्धा अथवा वेदवाणी के मार्ग में, अर्थात् श्रद्धापूर्वक वेदमार्ग पर चलता हुआ समिधा=ज्ञान की दीप्ति से अग्निम्=उस अग्नेयी प्रभु को यक्षत्=अपने साथ सङ्गत करता है। केवल प्रभु को ही नहीं, अश्विना=प्राणापान को, इन्द्रम्=परमैश्वर्यशाली आत्मतत्त्व को तथा सरस्वतीम्=ज्ञान की अधिदेवता को भी अपने साथ सङ्गत करता है। दानपूर्वक अदन से और इसके साथ ज्ञान की दीप्ति व श्रद्धा को अपनाने से हम प्रभु को, प्राणापान को, इन्द्रतत्त्व-आत्मिक शक्ति को तथा ज्ञान को अपने साथ सङ्गत करते हैं। ३. अब हम गोधूमैः=गेहूँ आदि अन्नों के प्रयोग से तथा कुवलैः=(कु-वल) पृथिवी पर संचरणों से, अर्थात् व्यायामों से अजः धूम्रः न=अज अर्थात् गतिशीलता से बुराइयों को दूर फेंकनेवाले होते हैं। (अज गतिक्षेपणयोः, न=च) और (धूज् कम्पने) वासनाओं को अपने से कम्पित करके दूर करनेवाले होते हैं। वस्तुतः गोधूमादि वानस्पतिक भोजन व उचित व्यायाम शारीरिक व मानस स्वस्थ के लिए आवश्यक हैं। ३. इस प्रकार वानस्पतिक भोजन व व्यायाम का उचित मिश्रण होने पर मधु=शहद भेषजम्=हमारा औषध हो जाता है। शहद का औषध के रूप में हम प्रयोग करते हैं। ४. शष्यैर्न=और (न=च) शष्यों से, अर्थात् इन वानस्पतिक भोजनों से हमें तेजः इन्द्रियम्=तेजस्विता व इन्द्रियों की शक्ति प्राप्त होती है, ५. अतः हम प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि पयः=दूध सोमः=सोमलता का रस परिस्त्रुता=निचोड़े जानेवाले फलों के रस के साथ घृतम्=घृत और मधु=शहद-ये

सब पदार्थ **व्यन्तु**=हमें विशेषरूप से प्राप्त हों। (परितः-सर्वतः स्तुता-द०) हम घृतादि पदार्थों का सेवन करनेवाले बनें। ६. इस प्रार्थना को सुनकर प्रभु कहते हैं कि हे **होता**=दानपूर्वक अदन करनेवाले जीव! तू घृतादि का भक्षण तो कर, परन्तु **आज्यस्य यज**=इस घृत का तू यज्ञ भी करनेवाला हो। इन पदार्थों को खा, परन्तु हवन अधिक कर। 'सब स्वयं खा जाना' जहाँ मानस विकारों को पैदा करता है वहाँ शरीर के रोगों का भी कारण हो जाता है।

भावार्थ—होता पुरुष श्रद्धा व ज्ञान को अपनाकर 'प्रभु, प्राणापान, इन्द्रशक्ति व विद्या' को अपने साथ जोड़ता है। वानस्पतिक भोजनों व व्यायामों से सब बुराइयों को दूर भगानेवाला 'अजधूम्र' बनता है। शहद इसका औषध होता है। शष्प=वानस्पतिक भोजन इसे तेजस्वी व इन्द्रियशक्तिसम्पन्न बनाते हैं। यह 'दूध-सोमरस-फलों का रस, घृत व मधु' को भोज्यद्रव्यों के रूप में प्राप्त करता है और घृतादि से हवन अवश्य करता है।

ऋषिः—स्वस्त्यात्रेयः। देवता—अश्व्यादयो लिङ्गोक्ताः। छन्दः—भुरिगत्यष्टिः। स्वरः—गान्धारः॥

सरस्वती यजन

होता यक्षत्तनूनपात्सरस्वतीमविर्मेघो न भेषजं पथा मधुमता भरन्नश्विनेन्द्राय वीर्यु
बदरैरुपवाकाभिर्भेषजं तोक्मभिः पयः सोमः परिस्तुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य
होतुर्यज ॥ ३० ॥

१. **होता**=त्यागपूर्वक अदन करनेवाला अतएव **तनूनपात्**=शरीर को न गिरने देनेवाला, शरीर को रोगों का शिकार न होने देनेवाला **सरस्वतीम्**=ज्ञानाधिदेवता को, ज्ञान की वाणी को **यक्षत्**=अपने साथ सङ्गत करता है। त्यागपूर्वक अदन से बुद्धि शुद्ध होती है और ज्ञान बढ़ता है। २. यह **होता अविः**=कामादि शत्रुओं से अपनी रक्षा करनेवाला होता है, **न**=और (न=च) **मेषः**=(मिष् to evulate, to contend, to rival)। यह उत्तमता के मार्ग में स्पर्धावाला होता है। 'अति समं क्राम' के उपदेश को सदा क्रियान्वित करता हुआ बराबरवालों को लाँघ जाने के लिए यत्नशील होता है। ३. यह **मधुमता पथा**=माधुर्यमय मार्ग से **भेषजं भरत्**=औषध का भरण करनेवाला होता है। मधुर मार्ग से चलने के कारण यह ईर्ष्यादि दुर्भावनाओं से पैदा होनेवाले विकारों से बचा रहता है। ४. ऐसी स्थिति में **अश्विना**=प्राणापान **इन्द्राय**=इस जितेन्द्रिय पुरुष के लिए **वीर्यम्**=शक्ति प्राप्त कराते हैं और **बदरैः**=बेरों से **उपवाकाभिः**=इन्द्रयवों से तथा **तोक्मभिः**=अंकुरित यवों से **भेषजम्**=औषध को प्राप्त करानेवाले होते हैं। वस्तुतः जितेन्द्रिय पुरुष के लिए ये बदर व यव आदि ही उत्तम औषध हो जाते हैं। ५. अब हम प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि **पयः**=दूध, **सोमः**=सोमरस, **परिस्तुता**=फलों के रस के साथ **घृतं मधु**=घृत और मधु (शहद) **व्यन्तु**=हमें प्राप्त हों। ६. प्रभु कहते हैं कि **होतः**=दानपूर्वक अदन करनेवाले! तू **आज्यस्य यज**=घृत का हवन भी कर। खाना तो सही, परन्तु अग्निहोत्र अधिक करना।

भावार्थ—होता शरीर का रक्षक होता है, सरस्वती को अपनाता है, वासनाओं से अपना रक्षक तथा उत्तमताओं में स्पर्धावाला होता है। माधुर्यमय मार्ग से चलना ही इसके लिए औषध हो जाता है। प्राणापान इसे वीर्यवान् बनाते हैं। बेर, इन्द्रयव व भुने चावल व जौ ही इसके लिए उत्तमौषध होते हैं। यह दूध, घृत आदि का सेवन करता है, परन्तु खाने से अधिक यज्ञ करता है।

ऋषिः—स्वस्त्यात्रेयः। देवता—अश्व्यादयः। छन्दः—अतिधृतिः। स्वरः—षड्जः॥

नराशंस-यजन

होता यक्षन्नराशंसं न नग्नहुं पतिंसुरया भेषजं मेषः सरस्वती भिषग्रथो न चन्द्रश्विनोर्वपाऽइन्द्रस्य वीर्युं बदरैरुपवाकाभिर्भेषजं तोक्मभिः पयः सोमः परिस्त्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥३१॥

१. होता=त्यागपूर्वक अदन करनेवाला प्रभु को अपने साथ यक्षत्=सङ्गत करता है जो प्रभु नराशंसम्=(नरैः=आशंस्यते) समन्तात् मनुष्यों से स्तुति किये जाते हैं 'यस्य विश्व उपासते'-सभी जिसकी उपासना करते हैं। न=(च) और नग्नहुम्=स्वयं कुछ भी धारण न करते हुए सब-कुछ देनेवाले हैं, पतिम्=सारे ब्रह्माण्ड के रक्षक हैं। २. यह होता प्रभु से मेल करके प्रभु की भाँति ही 'नराशंस-नग्नहु व पति' बनने का प्रयत्न करता है। मेषः=उत्तमता से स्पर्धा करनेवाला बनकर सुरया=(सुर to govern) आत्मनियन्त्रण से भेषजम्=औषध को प्राप्त कर लेता है। आत्मनियन्त्रण से सुरक्षित वीर्य ही इसके लिए औषध का काम करता है। ३. सरस्वती=ज्ञानाधिदेवता ही भिषक्=इसके लिए वैद्य बन जाती है। ज्ञानी होकर सब वस्तुओं का यह ठीक प्रयोग करता है और रोगों से बचा रहता है। ४. न=और सरस्वती के वैद्य होने पर रथः=इसका यह शरीररूप रथ चन्द्री=सदा प्रसन्नतावाला होता है। अथवा 'चन्द्रमिति हिरण्यनाम' चन्द्र का अभिप्राय है 'सोना'। इसका शरीररूप रथ सुवर्ण की भाँति देदीप्यमान होता है। इसमें अश्विनोः वपा=प्राणापान का वपन होता है, प्राणापान बोये जाते हैं, अर्थात् प्राणापान-शक्ति सुदृढ़ होती है और इन्द्रस्य=जितेन्द्रिय पुरुष का वीर्यम्=वीर्य इसमें होता है। ५. बदरैः=बेरों से उपवाकाभिः=इन्द्रयवों से और तोक्मभिः =अंकुरितयवों से भेषजम्=इसको औषध प्राप्त हो जाता है। इन सामान्य वस्तुओं के अन्दर भी विज्ञानपूर्वक प्रयोग से वह औषधों को पा लेता है। ६. यह प्रभु से प्रार्थना करता है कि पयः=दूध, सोमः=सोमरस, परिस्त्रुता=फलों के रस के साथ घृतं मधु=घृत और शहद व्यन्तु=प्राप्त हों। ७. प्रभु कहते हैं कि हे होतः=त्यागपूर्वक अदन करनेवाले! तू आज्यस्य यज=घृत का यजन करनेवाला हो। घृत का सेवन भी कर, परन्तु अग्निहोत्र अधिक कर।

भावार्थ—होता सर्वस्तुत्य प्रभु का अपने से मेल करता है। आत्मनियन्त्रण से वह रोगों का प्रतीकार करनेवाला होता है। ज्ञान ही इसका वैद्य होता है। इसका शरीर-रथ सुवर्ण के समान देदीप्यमान होता है, इसमें प्राणापानशक्ति दृढ़ होती है। यह वीर्यवान् होता है। बेर, यव आदि इसके भेषज हो जाते हैं। यह दूध आदि उत्तम पदार्थों का सेवन करता है, परन्तु अग्निहोत्र अधिक करता है।

ऋषिः—स्वस्त्यात्रेयः। देवता—सरस्वत्यादयः। छन्दः—विराडतिधृतिः। स्वरः—षड्जः॥

इडा-यजन

होता यक्षदिडेडितऽआजुह्वानः सरस्वतीमिन्द्रं बलेन वर्धयन्नृषभेण गर्वेन्द्रियमश्विनेन्द्राय भेषजं यवैः कर्कशुभिर्मधुं लाजैर्न मासं पयः सोमः परिस्त्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥३२॥

१. होता=दानपूर्वक अदन करनेवाला ईडितः=(ईडितम् अस्य अस्तीति) उपासनावाला होकर इडा=(इडाम्-म०) इडा को, श्रद्धा को व प्रशंसित ज्ञानवाणी को यक्षत्=अपने साथ जोड़ता है। २. श्रद्धा व ज्ञानवाणियों से यह सरस्वतीम् आजुह्वानः=सरस्वती को अपने में

पुकार रहा होता है और सरस्वती का आराधन करके अपने ज्ञान को बढ़ा रहा होता है। ३. यह बलेन=बल के धारण से इन्द्रम्=प्रभु को वर्धयन्=बढ़ाता है। 'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः'=बलहीन से आत्मतत्त्व अप्राप्य है, यह सबल होकर उस आत्मतत्त्व को प्राप्त करता है। ४. ऋषभेण=(ऋष गतौ, गन्तुं योग्येन-द०) क्रिया में परिणत होनेवाले गवा=(गमयन्ति अर्थम्) वेदज्ञान से यह इन्द्रियम्=ज्ञानेन्द्रियों व कर्मेन्द्रियों को वर्धयन्=बढ़ाता है। गति कर्मेन्द्रियों को सशक्त करती है और ज्ञान ज्ञानेन्द्रियों को। ५. अश्विना=प्राणापान इन्द्राय=इस जितेन्द्रिय पुरुष के लिए भेषजम्=औषध होते हैं। ६. यवैः=जौ के साथ तथा कर्कशुभिः=बेरों के साथ मधु=शहद न=और लाजैः=लाजाओं के साथ, अक्षत धान्यों के साथ मासरम्=ओदन=भात। ये इन्द्र के लिए भेषज हो जाते हैं। ७. यह इन्द्र प्रार्थना करता है कि पयः=दूध, सोमः=सोमरस, परिस्नुता=फलों के रस के साथ घृतं मधु=घृत और शहद ये वस्तुएँ व्यन्तु=हमें प्राप्त हों। ८. प्रभु कहते हैं कि हे होतः=त्यागपूर्वक अदन करनेवाले! तू आज्यस्य यज=इस घृत का सेवन भी कर, परन्तु अग्निहोत्र अधिक कर।

भावार्थ—होता श्रद्धा व ज्ञान की वाणी का अपने साथ मेल करता है। यह सरस्वती की आराधना करता है। बल से आत्मतत्त्व का वर्धन करता है, गति व ज्ञान-प्राप्ति से ज्ञानेन्द्रियों व कर्मेन्द्रियों को सशक्त करता है। प्राणापान इसके लिए वैद्य हो जाते हैं। 'बेर, यव, मधु, लाजा व मासर' आदि पदार्थ इसके लिए भेषज का काम करते हैं। यह होता घृतादि का सेवन करता है, परन्तु अग्निहोत्र अधिक करता है।

ऋषिः—स्वस्त्यात्रेयः। देवता—अश्व्यादयः। छन्दः—निचृदष्टिः। स्वरः—मध्यमः॥

बर्हिर्यजन

होता यक्षद् बर्हिरूर्णम्रदा भिषङ् नासत्या भिषजाश्विनाश्वा शिशुमती भिषग्धेनुः सरस्वती भिषग्दुहेऽन्द्राय भेषजं पयः सोमः परिस्नुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३३ ॥

१. होता=दानपूर्वक अदन करनेवाला ऊर्णम्रदाः=(ऊर्ण=आच्छादकं=वृत्रं मृदनाति) ज्ञान के आवरणभूत वृत्र का विनाश करनेवाला बनकर, कामादि वासनाओं को नष्ट करके बर्हिः=जिसमें से वासनाओं का उद्बर्हण कर दिया गया है, ऐसे वासनाशून्य हृदय का यक्षत्=अपने साथ सङ्ग (मेल) करता है। यह ऊर्णम्रदाः भिषज्=स्वयं अपना वैद्य होता है। २. ऐसा होने पर नासत्या=ये नासिका में होनेवाले अश्विना=प्राणापान भी भिषजा=इसके वैद्य बनते हैं, अर्थात् वासनाओं का विनाश करना ही वैद्य बनना है। वासनाओं का विनाश होने पर ही प्राणापान वैद्य होते हैं। वासनामय जीवन में प्राणापान की शक्ति क्षीण हो जाती है। उन्होंने रोगों को क्या दूर करना? ३. प्राणापान के वैद्य के रूप में होने पर एक गृहिणी अश्वा=सदा उत्तम कर्मों में व्याप्त, सबल व शिशुमती=उत्तम सन्तानोंवाली होती है। ४. इस गृहिणी के लिए धेनुः=घर में रखी हुई गौ भिषक्=वैद्य हो जाती है, क्योंकि गोदुग्ध शरीर को ही नहीं मन व बुद्धि को भी नीरोग करता है। ५. इसके लिए सरस्वती=ज्ञान की अधिदेवता भी भिषक्=वैद्य होती है। ज्ञानपूर्वक किया गया वस्तुओं का उपयोग रोगों को नहीं आने देता। ये वैद्यभूता सरस्वती इन्द्राय=जितेन्द्रिय पुरुष के लिए भेषजं दुहे=औषध को दुहती है, प्राप्त कराती है। अजितेन्द्रिय के लिए औषध का कोई लाभ नहीं। ६. यह जितेन्द्रिय पुरुष प्रार्थना करता है कि पयः=दूध, सोमः=सोमरस, परिस्नुता=फलों के रस के साथ घृतं मधु=घृत व शहद व्यन्तु=हमें प्राप्त हों। ७. प्रभु कहते हैं कि हे होतः=त्यागपूर्वक अदन

करनेवाले! तू आज्यस्य=घृत का यज=यजन कर। खा भी, परन्तु अग्निहोत्र अधिक कर।

भावार्थ—होता वृत्र को कुचलकर, पवित्र हृदय को अपने साथ सङ्गत करता है। इसके लिए प्राणापान वैद्य होते हैं। इन वैद्योंवाली माता कर्मों में व्याप्त व उत्तम सन्तानवाली होती है। इनके लिए गौ तथा ज्ञानाधिदेवता वैद्य हो जाते हैं। हम जितेन्द्रिय बनकर दूध आदि उत्तम पदार्थों का सेवन करें। घृत आदि को खाएँ, परन्तु अग्निहोत्र अधिक करें।

ऋषिः—स्वस्त्यात्रेयः। देवता—अश्व्यादयः। छन्दः—निचृदतिधृतिः। स्वरः—षड्जः॥

द्वार-यजन

होता यक्षहुरो दिशः कवष्यो न व्यचस्वतीरश्विभ्यां न दुरो दिशऽइन्द्रो न रोदसी दुधे दुहे धेनुः सरस्वत्यश्विनेन्द्राय भेषजम्शुक्रं न ज्योतिरिन्द्रियं पयः सोमः परिस्नुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥३४॥

१. यह शरीर मुखादि नौ द्वारोंवाला है (दो कान, दो नासिका छिद्र, दो आँखें, मुख, पायु, उपस्थ)। इन द्वारों में नाभि व ब्रह्मरन्ध्र को मिलाकर ११ द्वार हो जाते हैं। दुरः=इन सब-के-सब द्वारों को होता=दानपूर्वक अदन करनेवाला व्यक्ति यक्षत्=अपने साथ सङ्गत करता है। ये द्वार दिशः=एक विशिष्ट उपदेश को लिये हुए हैं। कानों ने ज्ञान की वाणियों को सुनने का निश्चय किया तो आँखों ने प्रकृति की शोभा में प्रभु की महिमा को देखने का निश्चय किया। एवं, प्रत्येक इन्द्रियद्वार की अपनी-अपनी एक दिशा है। कवष्यः=(कवषः=shield) जो द्वार इस शरीर की रक्षा के लिए ढालरूप हैं, इनका ठीक प्रयोग शरीर को रोगादि के आक्रमण से बचाता है न=और ये द्वार व्यचस्वतीः=अपनी-अपनी शक्तियों के विस्तारवाले हैं। २. न=और दुरः=ये द्वार अश्विभ्याम्=प्राणापान के द्वारा दिशः=अपनी विशिष्ट दिशा में कार्य करनेवाले होते हैं। ३. प्रत्येक इन्द्रियद्वार का ठीक प्रयोग करनेवाला इन्द्रः=जितेन्द्रिय पुरुष रोदसी=द्यावापृथिवी का, मस्तिष्क व शरीर का दुधे=पूरण करता है। ४. न=और इन्द्राय=जितेन्द्रिय पुरुष के लिए धेनुः=गौ भेषजम्=सब रोगों के औषध को दुहे=दुहती है, अर्थात् गोदुग्ध इसके रोगों का इलाज होता है न=और सरस्वती=ज्ञानाधिदेवता इसके लिए शुक्रं ज्योतिः=शुद्ध व क्रियाशील बनानेवाला (शुच् दीप्तौ, शुक् गतौ) ज्ञान दुहती है तथा अश्विना=प्राणापान इसके लिए इन्द्रियम्=इन्द्रियों की शक्ति को दुहते हैं। ५. यह इन्द्र प्रभु से प्रार्थना करता है कि पयः=दूध, सोमः=सोमरस, परिस्नुता=फलों के रस के साथ घृतं मधु=घी और शहद मुझे व्यन्तु=प्राप्त हों। ६. प्रभु कहते हैं कि हे होतः=दानपूर्वक अदन करनेवाले! तू आज्यस्य यज=घृत का यजन कर।

भावार्थ—हम होता बनकर इस नगरी के सब द्वारों को अपनी-अपनी विशिष्ट दिशा में कार्य करनेवाला बनाएँ। ये द्वार हमारे लिए ढालरूप हों, विस्तृत शक्तियोंवाले हों। हम मस्तिष्क व शरीर दोनों का पूरण करें। हमें दूध आदि पदार्थ प्राप्त हों। उन पदार्थों का हम सेवन करें, परन्तु अग्निहोत्र अधिक करें।

ऋषिः—स्वस्त्यात्रेयः। देवता—अश्व्यादयः। छन्दः—भुरिगष्टिः। स्वरः—मध्यमः॥

उषा-यजन

होता यक्षत्सुपेशसोषे नक्तं दिवाश्विना समञ्जाते सरस्वत्या त्विषिमिन्द्रे न भेषजःश्येनो न रजसा हृदा श्रिया न मासरं पयः सोमः परिस्नुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥३५॥

१. होता=त्यागपूर्वक अदन करनेवाला व्यक्ति **सुपेशसा**=उत्तम रूप का निर्माण करने-वाली **उषे**=उषःकालों को, प्रातः तथा सायं की सन्धिभूत उषाओं को, **यक्षत्**=अपने साथ सङ्गत करता है। इन उषाओं में सूर्य अस्त हो रहा होता है तो चन्द्र उदय होता है, चन्द्र अस्त हो रहा होता है तो सूर्य का उदय हो रहा होता है। एवं, इन उषःकालों में दोनों प्रकाश होते हैं, इससे इन्हें इंग्लिश में twilight यह नाम दिया गया है। ये दोनों काल मनुष्य को यह उपदेश देते हैं कि तूने मस्तिष्क में सूर्य के समान ज्ञान से दीप्त बनना तथा मन में चन्द्र की भाँति आह्लादमय होना। २. इस होता को **अश्विना**=प्राणापान **नक्तं दिवा**=रात-दिन **सरस्वत्या**=ज्ञानाधिदेवता से **समञ्जाते**=अलंकृत करते हैं। प्राणसाधना से बुद्धि तीव्र होती है। ३. **न**=और बुद्धि की तीव्रता के द्वारा **इन्द्रे**=जितेन्द्रिय पुरुष में **त्विषिम्**=ज्ञानदीप्ति को ही **भेषजम्**=औषधरूप से करते हैं। ४. ये प्राणापान इस इन्द्र को **श्येनः** **न**=तीव्र गतिवाले श्येनपक्षी की भाँति **रजसा**=कर्म में (रजः कर्मणि) अलंकृत करते हैं। यह कभी अकर्मण्य नहीं होता। वासनारूप पक्षियों का शिकार करता ही रहता है। इस शिकार के लिए निरन्तर क्रियाशीलता आवश्यक है। ५. निरन्तर क्रियाशीलता के होने पर **हृदा**=हृदय से **श्रिया न**=(न=च) शोभा के साथ **मासरम्**=प्रत्येक मास में रमण की (मासेषु रमते) वृत्ति को धारण करता है। इसका हृदय श्रीसम्पन्न व आनन्दयुक्त होता है। इसी से इसे सब मासों व ऋतुओं में आनन्द अनुभव होता है। ६. यह हृदय से श्री को धारण करनेवाला चाहता है कि **पयः**=दूध, **सोमः**=सोमरस, **परिस्त्रुता**=फलों के रस के साथ **घृतं मधु**=घी और शहद **व्यन्तु**=मुझे प्राप्त हों। ७. प्रभु इसे उपदेश देते हैं कि हे **होतः**=त्यागपूर्वक उपभोक्तः! तू **आज्यस्य**=घृत का **यज**=यजन कर। खा, परन्तु अग्निहोत्र अधिक कर।

भावार्थ—उषःकाल होता को सूर्य के समान दीप्त व चन्द्र के समान प्रसन्न बनाते हैं। प्राणापान इसे सदा सरस्वती से अलंकृत करते हैं। ज्ञानदीप्ति इनके लिए भेषज बन जाती है। यह श्येनपक्षी की भाँति क्रियाशील होता है। हृदय में श्री को धारण करता हुआ प्रत्येक ऋतु व मास में आनन्द का अनुभव करता है। यह दूध आदि उत्तम पदार्थों का ही सेवन करता है। इन पदार्थों का सेवन करता हुआ अग्निहोत्र अधिक करता है, इसीलिए इसका 'होता' नाम सार्थक होता है।

ऋषिः—स्वस्त्यात्रेयः। देवता—अश्व्यादयः। छन्दः—निचृदष्टिः। स्वरः—मध्यमः॥

दैव्य होतृ-यजन

होता यक्षुद्द्वैव्या होतारा भिषजाश्विनेन्द्रं न जागृवि दिवा नक्तं न भेषजैः शूषःसरस्वती भिषक्सीसेन दुहऽइन्द्रियं पयः सोमः परिस्त्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥३६॥

१. होता=दानपूर्वक अदन करनेवाला **दैव्या होतारा**=(अयं चाग्निरसौ च मध्यमः—नि० ७।३०) अग्नि और वायुतत्त्व को **यक्षत्**=अपने साथ सङ्गत करता है। अग्नि तत्त्व इसके मलों को भस्म करनेवाला तथा प्रकाश प्राप्त करानेवाला है, और वायुतत्त्व इसके बल का कारण बनता है। २. वह होता **अश्विना**=प्राणापान को भी अपने साथ सङ्गत करता है जो प्राणापान **भिषजा**=इसके वैद्य होते हैं। ३. **न**=और यह होता **जागृवि इन्द्रम्**=जागरणशील, सदा अप्रमत्त आत्मा को अपने साथ सङ्गत करता है। ४. **न**=और वह होता **दिवा नक्तम्**=दिन-रात **भेषजैः**=रोगनिवर्तनों के द्वारा **शूषम्**=शत्रुओं के शोषक बल को अपने साथ सङ्गत करता है। रोग ही बल का क्षय करते हैं। ५. **सरस्वती भिषक्**=यह ज्ञानाधिदेवतारूप वैद्य **सीसेन**=नागभस्म द्वारा **इन्द्रियम्**=इन्द्रियों की शक्तियों को **दुहे**=पूरित करती है। ६. **पयः सोमः**=दूध

व सोमलता का रस तथा परिस्त्रुता=फलों के रस के साथ घृतं मधु=घृत और शहद को व्यन्तु=प्राप्त हों, परन्तु हे होतः=यज्ञशील पुरुष! तू आज्यस्य यज=घृत का हवन करनेवाला बन।

भावार्थ—होता अपने साथ अग्नि तथा वायुतत्त्व को, वैद्यभूत प्राणापान को, सदा अप्रमत्त आत्मतत्त्व को, दिन-रात रोगनिवारणों के साथ बल को सङ्गत करता है और ज्ञानाधिदेवता नागभस्मादि धातु निर्मित ओषधियों से शक्ति को पूरित करती है। दूध आदि पदार्थों को यह प्राप्त करता है, परन्तु अग्निहोत्र अधिक करता है।

ऋषिः—स्वस्त्यात्रेयः। देवता—अश्व्यादयः। छन्दः—धृतिः। स्वरः—ऋषभः॥

तिस्रो देवीर्यजन

होता यक्षत्तिस्रो देवीर्न भेषजं त्रयस्त्रिधातवोऽपसो रूपमिन्द्रे हिरण्ययमश्विनेडा न भारती वाचा सरस्वती महऽइन्द्राय दुहऽइन्द्रियं पयः सोमः परिस्त्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥३७॥

१. होता=यह दानपूर्वक अदन करनेवाला तिस्रः देवीः='इडा, सरस्वती, भारती'=श्रद्धा, ज्ञान व वाणी—इन तीन देवियों को यक्षत्=अपने साथ सङ्गत करता है। न भेषजम्=और अपने साथ औषध को सङ्गत करता है। इडा=श्रद्धा मन के दोषों को दूर करके मानस आरोग्य प्राप्त कराती है, सरस्वती मस्तिष्क को ज्ञान से परिपूर्ण करके मस्तिष्क को उज्ज्वल करती है तथा भारती सब इन्द्रियों के भरण का कारण बनती है। ३. त्रयः=तीन त्रिधातवः=प्राणमयकोश, मनोमयकोश तथा विज्ञानमयकोश का धारण करनेवाले अपसः=कर्मशील अश्विना=प्राणापान इडा=श्रद्धा न=और भारती वाचा=(ज्ञान की वाणी) इन्द्रे=जितेन्द्रिय पुरुष में हिरण्ययम्=ज्योतिर्मय स्वर्ण के समान देदीप्यमान रूपम्=रूप को धारण करते हैं। प्राणापान 'प्राणमयकोश' को दीप्त करते हैं तो श्रद्धा 'मनोमयकोश' को पूर्ण स्वस्थ करके दीप्त करती है और ज्ञान की वाणी मस्तिष्क की नीरोगता का कारण बनती है। ३. वाचा=ज्ञान की वाणियों के साथ सरस्वती=यह ज्ञानाधिदेवता इन्द्राय=जितेन्द्रिय पुरुष के लिए महः=तेजस्विता को तथा इन्द्रियम्=इन्द्रियशक्तियों को दुहे=पूरित करती है। ज्ञान वासनाओं को विनष्ट करता है, वासना-विनाश से जीवन भोगप्रवण नहीं होता। भोग ही वस्तुतः शक्ति को व इन्द्रियों के तेज को क्षीण करते हैं। ४. यह भोगों से ऊपर उठनेवाला व्यक्ति प्रार्थना करता है कि मुझे पयः सोमः=दूध, सोमरस परिस्त्रुता घृतं मधु=फलों के रस के साथ घी और शहद आदि उत्तम पदार्थ ही व्यन्तु=प्राप्त होते हैं। ५. इस प्रार्थी को प्रभु प्रेरणा प्राप्त कराते हैं कि होतः=दानपूर्वक अदन करनेवाले! आज्यस्य यज=तू घृत का यजन करनेवाला बन। यह अग्नि में डाला हुआ घृत तेरा अधिक कल्याण करेगा।

भावार्थ—हम त्यागपूर्वक उपभोग करनेवाले बनकर 'इडा, सरस्वती, भारती' रूप तीनों देवियों के साथ अपना सम्बन्ध स्थापित करें। ये तीनों 'मन, मस्तिष्क व शरीर' में हमारा धारण करनेवाली हैं। हमें दूध आदि उत्तमोत्तम पदार्थ प्राप्त हों। हम यज्ञों में उनका विनियोग करते हुए यज्ञशेष का सेवन करनेवाले बनें।

ऋषिः—स्वस्त्यात्रेयः। देवता—अश्व्यादयः। छन्दः—भुरिक्कृतिः। स्वरः—निषादः॥

सुरेतसः यजन

होता यक्षत्सुरेतसमृषभं नयीपसं त्वष्टारिमिन्द्रमश्विना भिषजं न सरस्वतीमोजो न जूतिरिन्द्रियं वृको न रभसो भिषग्यशः सुरया भेषजश्श्रिया न मासरं पयः सोमः परिस्त्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥३८॥

१. होता=त्यागपूर्वक अदन करनेवाला **यक्षत्**=सङ्गत करता है। किसको? **सुरेतसम्**=उत्तम रेतस्वाले को, उत्तम वीर्यशक्तिवाले को और अतएव **ऋषभम्**=(ऋष गतौ) गतिशील को, **नर्यापसम्**=सदा नरहितकारी कर्म करनेवाले को, और **त्वष्टारम्**=देवशिल्पी को, अर्थात् अपने जीवन में दिव्य गुणों के निर्माण करनेवाले को, अर्थात् जो होता बनता है वह अपने जीवन में उत्तम वीर्य की रक्षा करनेवाला, गतिशील, नरहितकारी कार्यों में तत्पर तथा दिव्य गुणों का निर्माता बनता है। २. यह होता **इन्द्रम्**=इन्द्र को **यक्षत्**=अपने साथ सङ्गत करता है, **अश्विनौ**=प्राणापान को **यक्षत्**=अपने साथ सङ्गत करता है, अर्थात् जितेन्द्रिय बनता है और इस जितेन्द्रियता के द्वारा बढ़ी हुई प्राणापान शक्तिवाला होता है। ३. यह होता **भिषजं न सरस्वतीम्**=उस ज्ञानाधिदेवता को भी अपने साथ सङ्गत करता है जो ज्ञानाधिदेवता उसके लिए वैद्य सिद्ध होती है। उसके सब रोगों का इलाज हो जाती है। वस्तुतः अविद्या सब क्लेशों का उत्पत्ति-क्षेत्र है तो विद्या सब क्लेशों को दूर करनेवाली है। ४. यह होता **ओजः**=ओजस्विता को **न**=(न=च) तथा **जूतिः**=क्रियाशीलता को **इन्द्रियम्**=प्रत्येक इन्द्रिय की शक्ति को अपने साथ सङ्गत करता है। ५. यह होता **वृकः**=(वृक आदाने) उत्तम गुणों का आदान करनेवाला **न**=और **रभसः**=शक्तिशाली (Robust) तथा **भिषक्**=सब रोगों का प्रतीकार करनेवाला बनकर **यशः**=यश को, **सुरया**=आत्मशासन के द्वारा **भेषजम्**=सब रोगों के प्रतीकार को, **न**=और **श्रिया**=श्री के साथ, शोभा के साथ **मासरम्**=सब मासों में रमण-आनन्द की भावना को अपने साथ सङ्गत करता है और ६. यही चाहता है कि **पयः सोमः**=दूध और सोमरस तथा **परिस्नुता**=फलों के रस के साथ **घृतं मधु**=घृत और मधु **व्यन्तु**=उसे प्राप्त हों। ७. इस प्रार्थना करनेवाले को प्रभु कहते हैं कि हे **होतः**=दानपूर्वक अदन करनेवाले! तू **आज्यस्य**=इस घृत का **यज**=यज्ञ करनेवाला बन।

भावार्थ—होता पुरुष उत्तम वीर्यवाला, गतिशील, नरहितकारी कर्मों में लगा हुआ होता है। यह दूध आदि सात्त्विक पदार्थों का सेवन करता है, परन्तु इस बात का ध्यान रखता है कि इन घृत आदि भोज्य पदार्थों से वह अग्निहोत्र अवश्य करता रहे।

ऋषिः—स्वस्त्यात्रेयः। देवता—अश्व्यादयः। छन्दः—निचृदत्यष्टिः। स्वरः—गान्धारः॥

वनस्पति-यजन

होता यक्षद्वनस्पतिःशमितारःशतक्रतुं भीमं न मन्युराजानं व्याघ्रं नमसाश्विना भामःसरस्वती भिषगिन्द्राय दुहऽइन्द्रियं पयः सोमः परिस्नुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज॥ ३९॥

१. होता=त्यागपूर्वक अदन करनेवाला **वनस्पतिम्**=ज्ञान की किरणों के पति को **यक्षत्**=अपने साथ सङ्गत करता है, अर्थात् ज्ञान की किरणों का पति बनता है। **शमितारम्**=शान्त वृत्तिवाले को अपने साथ सङ्गत करता है। **शतक्रतुम्**=अनन्त प्रज्ञावाले को अथवा सौ-के-सौ वर्ष यज्ञमय जीवनवाले को **न**=तथा **भीमम्**=शत्रुओं के लिए भयंकर को, **मन्युम्**=विचारशील को, **राजानम्**=बड़े व्यवस्थित जीवनवाले को, **व्याघ्रम्**=(वि आ जिघ्रति) विविध विज्ञानों की समन्ततः गन्ध ग्रहण करनेवाले को, अर्थात् यह होता अपने जीवन को उल्लिखित गुणों से युक्त बनाता है। २. **नमसा**=नम्रता के द्वारा तथा परमेश्वर के प्रति नमन के द्वारा **अश्विना**=यह अपने साथ प्राणापान को तथा **भामम्**=तेजस्विता को सङ्गत करता है। वस्तुतः विनीतता से

प्राणशक्ति व तेज की वृद्धि होती है। अभिमान व अक्खड़पन से प्राणशक्ति व तेजस्विता की हानि ही होती है। ३. सरस्वती=ज्ञानाधिदेवता भिषक्=इस होता के लिए वैद्य होती है और इन्द्राय=जितेन्द्रिय पुरुष के लिए इन्द्रियम् दुहे=इन्द्रियों की शक्ति का पूरण करती है। ४. यह जितेन्द्रिय पुरुष चाहता है कि उसे पयः सोमः=दूध, सोमरस परिस्त्रुता=फलों के रस के साथ घृतं मधु=घृत और मधु व्यन्तु=प्राप्त हों। ५. इस जितेन्द्रिय पुरुष से प्रभु कहते हैं कि हे होतः=यज्ञशील पुरुष! तू आज्यस्य यज=घृत का यजन कर। घृत को खा भी, परन्तु अग्निहोत्र करना न भूल। यही बात तुझे 'होता' बनाएगी।

भावार्थ—होता पुरुष ज्ञान की किरणों का पति, शान्त, अनन्त प्रज्ञानवाला व यज्ञशील, शत्रुओं के लिए भयंकर, विचारशील, व्यवस्थित जीवनवाला व व्यापक ज्ञानवाला बनता है। यह नम्रता के द्वारा प्राणापान व तेजस्विता को धारण करता है। ज्ञानाधिदेवता इसे इन्द्रियों की शक्ति से पूर्ण करती है। इसे दूध आदि उत्तम पदार्थ प्राप्त होते हैं। यह उनका यज्ञशेष के रूप में सेवन करता है।

ऋषिः—स्वस्त्यात्रेयः। देवता—अश्व्यादयः। छन्दः—विराडत्यष्टिः^क, अत्यष्टिः^र। स्वरः—गान्धारः॥

अग्नि-यजन

^कहोता यक्षद्गनिं^१स्वाहाज्यस्य स्तोकाणां^२स्वाहा मेदसां पृथक् स्वाहा छागंमश्विभ्याम्^३ स्वाहा मेषं^४सरस्वत्यै स्वाहा^५ऋषभमिन्द्राय सिंहाय सहसे^६इन्द्रियं^७स्वाहाग्निं न भेषजं^८स्वाहा सोममिन्द्रियं^९ स्वाहेन्द्रं^{१०}सुत्रामाणं^{११}सवितारं वरुणं भिषजां पतिं^{१२}स्वाहा वनस्पतिं प्रियं पाथो न भेषजं^{१३}स्वाहा देवाऽआज्यपा जुषाणोऽअग्निर्भेषजं पयः सोमः परिस्त्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यजं ॥४०॥

१. होता=यज्ञ करके यज्ञशेष खानेवाला व्यक्ति अग्निं यक्षत्=अग्नि का यजन करता है, अर्थात् अग्निहोत्र करता है। इस अग्निहोत्र के लिए वह स्वाहा=(स्व+हा) अपने धन व स्वार्थ का त्याग करता है, सारा स्वयं ही नहीं खा लेता। २. यह अग्निहोत्र के समय अग्नि में आज्यस्य स्तोकाणां स्वाहा=घृत के कणों की आहुति देता है और मेदसां पृथक् स्वाहा=विविध ओषधियों के मेदस्=गूदे की अलग-अलग आहुति देता है। उदाहरणार्थ अश्विभ्याम्=प्राणापान की वृद्धि के उद्देश्यसे होनेवाले यज्ञ में छागं स्वाहा=अजमोद ओषधि के मेदस् की आहुति देता है। सरस्वत्यै=ज्ञानाधिदेवता के लिए मेषं स्वाहा=मेढासिंगी ओषधि के गूदे की आहुति देता है। इन्द्राय=इन्द्र की शक्ति के विकास के लिए सिंहाय=सिंह के समान शत्रुओं का अभिभव करनेवाला बनने के लिए तथा सहसे=अत्यन्त बलवान्, बलरूप बनने के लिए भेषजं स्वाहा=ऋषभक ओषधि के मेदस् की आहुति देता है। (मेदस् वह भाग है जिसमें medicinal=ओषध के गुण प्रचुर मात्रा में निहित होते हैं।) ३. इन्द्रियं स्वाहा=इस स्वाहा की क्रिया से, अर्थात् अग्निहोत्र से यह होता इन्द्रियं यक्षत्=प्रत्येक इन्द्रिय की शक्ति को अपने साथ सङ्गत करता है। ४. अग्निं न भेषजं स्वाहा=(न=च) और इस अग्निहोत्र से उस अग्नि को अपने साथ सङ्गत करता है जो उसके लिए औषध के समान होता है। ५. सोमम् इन्द्रियं स्वाहा=इस यज्ञक्रिया से यह उस सोम को, वीर्य को, अपने साथ सङ्गत करता है जो सोम इसकी इन्द्रिय-शक्तियों को बढ़ानेवाला होता है। ६. स्वाहा=इस स्वार्थत्यागरूप यज्ञ की क्रिया से यह इन्द्रम्=उस

आत्मशक्ति को अपने साथ सङ्गत करता है जो आत्मशक्ति **सुत्रामाणम्**=बड़ी उत्तमता से अपना त्राण करती है और इस मानव-जीवन को रोगों व वासनाओं का शिकार नहीं होने देती। **सवितारम्**=यह अपने साथ सविता=निर्माण की देवता को सङ्गत करता है जो निर्माण की देवता **वरुणम्**=वरुण है, सब प्रकार के द्वेषों का निवारण करनेवाली है और **भिषजां पतिम्**=सबसे मुख्य वैद्य है। मनुष्य निर्माणात्मक कार्यों में लगे हों तो जहाँ वे परस्पर द्वेष नहीं करते वहाँ नाना प्रकार के रोगों के शिकार भी नहीं होते। द्वेष व रोग आलसियों को ही अपना शिकार बनाते हैं। ७. **स्वाहा**=यज्ञक्रिया से यह होता **वनस्पतिम्**=वनस्पति को अपने साथ सङ्गत करता है जो वनस्पति **प्रियं पाथः**=बड़ा तृप्तिकारक व कमनीय अन्न होता है (पाथः=शरीररक्षक अन्न) **न**=और **भेषजम्**=औषध होता है। ८. **देवाः**=देव लोग **आज्यपाः**=घृत का पान करनेवाले होते हैं, वे घृत का सेवन करते हैं। यह घृत का विधिवत् प्रयोग उनके मलों का क्षरण करनेवाला होता है और उनके ज्ञान को दीप्त करता है। ९. **जुषाणः अग्निः**=प्रीतिपूर्वक सेवन किया जाता हुआ अग्निः **भेषजम्**=औषध होता है। अग्निहोत्र सब रोगों को दूर करनेवाला होता है। १०. यह होता प्रार्थना करता है कि **पयः सोमः**=दूध व सोमरस **परिस्त्रुता**=फलों के रस के साथ **घृतं मधु**=घृत और शहद **व्यन्तु**=हमें प्राप्त हों। ११. प्रभु इस होता से कहते हैं कि **होतः**=हे यज्ञशील पुरुष! तू **आज्यस्य यज**=घृत का यजन करनेवाला बन। खा, परन्तु अग्निहोत्र अधिक कर।

भावार्थ—होता पुरुष प्रतिदिन अग्निहोत्र करता है, अग्नि में घृत के कणों को डालता है और साथ ही प्राणापान के लिए अजमोद आदि ओषधियों के मध्यभाग की भी आहुतियाँ देता है, ज्ञानवृद्धि के लिए मेढासिंगी तथा इन्द्र शक्ति के विकास के लिए ऋषभक ओषधि की आहुतियाँ भी देता है। देव लोग घृतादि सात्त्विक पदार्थों का ही सेवन करते हैं, परन्तु उनकी आहुतियाँ अधिक देते हैं।

ऋषिः—स्वस्त्यात्रेयः। देवता—विद्वांसः। छन्दः—अतिधृतिः। स्वरः—षड्जः॥

छाग-मेष-ऋषभ

होता यक्षदश्विनौ छागस्य वपाया मेदसो जुषेतां हविर्होतर्यज । होता यक्षत्सरस्वतीं मेषस्य वपाया मेदसो जुषतां हविर्होतर्यज । होता यक्षदिन्द्रमृषभस्य वपाया मेदसो जुषतां हविर्होतर्यज ॥४१॥

१. **होता**=त्यागपूर्वक अदन करनेवाला **अश्विनौ**=प्राणापान को **यक्षत्**=अपने साथ सङ्गत करता है और इसी उद्देश्य से प्रभु उससे कहते हैं कि हे **होतः**=यज्ञशील पुरुष! तेरे ये प्राणापान **छागस्य**=अजमोद ओषधि के **वपाया मेदसः**=(वप=मुण्डन-छेदन) रोग का छेदन करनेवाले गूदे के भाग का **जुषेताम्**=सेवन करें, तथा तू **हविः यज**=इस अजमोद ओषधि को हविरूप में अग्नि के साथ सङ्गत कर, अर्थात् इस ओषधि की अग्नि में आहुतियाँ दे। २. **होता**=यह दानपूर्वक अदन करनेवाला **सरस्वती**=ज्ञानाधिदेवता को **यक्षत्**=अपने साथ सङ्गत करता है और इसी उद्देश्य से प्रभु उससे कहते हैं कि **होतः**=हे यज्ञशील पुरुष! तू **मेषस्य**=मेढासिंगी ओषधि के **वपाया मेदसः**=रोगछेदक गूदे के भाग को **जुषताम्**=सेवन कर तथा **हविः यज**=हविरूप में अग्नि के साथ इसे सङ्गत कर। इस ओषधि की अग्नि में आहुतियाँ दे। ३. **होता**=यह यज्ञशेष का भोजन करनेवाला पुरुष **इन्द्रम्**=आत्मशक्ति को

यक्षत्=अपने साथ सङ्गत करे। इसी उद्देश्य से वह ऋषभस्य=ऋषभक ओषधि के वपाया मेदसः=रोगछेदन करनेवाले औषध-गुणयुक्त मध्यभाग का जुषताम्=सेवन करे। प्रभु कहते हैं कि होतः=हे यज्ञशील पुरुष! तू हविःयज=हविरूप में इनका यजन करनेवाला बन।

भावार्थ—इस यज्ञमय जीवन में हम अजमोद ओषधि के प्रयोग व यज्ञ से प्राणापान शक्ति का वर्धन करें। मेदासिंगी ओषधि के प्रयोग से हम मस्तिष्क की शक्ति का विकास करें तथा ऋषभक ओषधि का प्रयोग हमारी आत्मशक्ति का विकास करे।

ऋषिः—स्वस्त्यात्रेयः। देवता—होत्रादयः। छन्दः—आर्च्युष्णिक्^क, विराडाकृतिः^१।

स्वरः—ऋषभः^क, पञ्चमः^१॥

शष्य-तोक्म-लाजा

^कहोता यक्षदश्विनौ सरस्वतीमिन्द्रःसुत्रामाणमिमे सोमाः^१सुरामाणश्छागैर्न मेषैर्ऋषभैः सुताः शष्यैर्न तोक्मभिलाजैर्महस्वन्तो मदा मासरेण परिष्कृताः शुक्राः पयस्वन्तोऽमृताः प्रस्थिता वो मधुश्चुतस्तानश्विना सरस्वतीन्द्रः सुत्रामा वृत्रहा जुषन्ताम्यसोम्यं मधु पिबन्तु मदन्तु व्यन्तु होतर्यज ॥४२॥

१. होता=यज्ञशील पुरुष अश्विनौ=प्राणापान को सरस्वती=ज्ञानाधिदेवता को सुत्रामाणम्=अपना उत्तम रक्षण करनेवाली इन्द्रम्=आत्मशक्ति को यक्षत्=अपने साथ सङ्गत करता है। २. इस उद्देश्य से ही इमे=ये सोमाः=सोमलता के रस छागैः=अजमोद ओषधि के रस के साथ सुताः=अभिषुत हुए-हुए प्राणशक्ति का वर्धन करते हैं, मेषैः=मेदासिंगी ओषधि के रस के साथ अभिषुत हुए-हुए इन्द्रशक्ति का विकास करते हैं और इस प्रकार ये सुरामाणाः=सुरमणीय हैं, जीवन में रमणीयता लानेवाले हैं। ३. ये रस क्रमशः शष्यैः=बालतृणों के साथ, छोटे-छोटे पालक आदि ओषधियों के पत्तों के साथ न=और तोक्मभिः=यवाङ्कुर के साथ, जौ के नवाङ्कुरों के साथ तथा लाजैः=अक्षतों के साथ (चावल के बने हुए) सेवन किये हुए महस्वन्तः=तेजस्वितावाले होते हैं, अर्थात् उन रसों के सेवन के साथ पथ्यरूप में 'शष्य-तोक्म व लाजा' का प्रयोग बड़ा गुणकारी हो जाता है। इन पथ्यों के साथ ये रस मदाः=(मदी हर्षे) हर्ष के जनक हो जाते हैं। ४. मासरेण=(मासेषु रमन्ते) और सदा सब मासों में प्रसन्न करने की मनोवृत्ति से परिष्कृताः=अलंकृत हुए-हुए ये रस शुक्राः=वीर्य को उत्पन्न करनेवाले, पयस्वन्तः=सब अङ्गों का आप्यायन करनेवाले तथा अमृताः=नीरोगता को देनेवाले होते हैं। ५. ये रस प्रस्थिताः=(होमाभिमुखं चलिताः—म०) अग्निकुण्ड में डालने पर, सारे वायुमण्डल में फैलते हुए जब सूर्य तक जाने लगते हैं तब वः=तुम सब होताओं के लिए ये मधुश्चुतः=मधु का स्रवण करनेवाले होते हैं। जीवन में अत्यन्त माधुर्य पैदा करते हैं। ६. तान्=उन रसों को अश्विना=प्राणापान सरस्वती=ज्ञानाधिदेवता इन्द्रः=वह आत्मशक्ति जो सुत्रामा=शरीर को रोगों से सम्यक् बचाती है तथा वृत्रहा=हृदय की वासनाओं का विनाश करती है, ये सब जुषन्ताम्=सेवन करें। ७. इन सोम्यं मधु=सोमकणों से उत्पन्न सारभूत (मधु) सोमशक्ति का, वीर्य का पिबन्तु=पान करें, अपने अन्दर ही व्याप्त करने का प्रयत्न करें, मदन्तु=आनन्द का अनुभव करें, व्यन्तु=(राजन्ताम्—म०) अपने जीवन को कान्त व दीप्त बनाएँ। ८. प्रभु कहते हैं कि होतः=हे यज्ञशील पुरुष! तू उल्लिखित रसों का प्रयोग अवश्य कर, परन्तु यज=यज्ञ करनेवाला बन। उन ओषधियों को हविरूप में अग्निकुण्ड में भी डाल।

भावार्थ—‘छाग, मेष व ऋषभक’ ओषधियों के पथ्य ‘शष्प, तोक्म व लाजा’ हैं। इनका यज्ञ करने पर ये अत्यन्त गुणकारी हो जाती हैं।

ऋषिः—स्वस्त्यात्रेयः। देवता—होत्रादयः। छन्दः—याजुषीपङ्क्तिः^क, उत्कृतिः^र।

स्वरः—पञ्चमः^क, षड्जः^र॥

‘अजमोद’ का प्रयोग व यजन

^कहोता यक्षदश्विनौ छागस्य ^रहविषऽआत्तामद्य मध्यतो मेदऽउद्धृतं पुरा द्वेषोभ्यः पुरा पौरुषेय्या गृभो घस्तां नूनं घासेऽअज्राणां यवसप्रथमानां^१ सुमत्क्षराणां^२ शतरुद्रियाणामग्निष्वात्तानां पीवोपवसनानां पार्श्वतः श्रोणितः शितामतऽउत्सादतोऽङ्गादङ्गादवत्तानां करतऽएवाश्विना जुषेतां^३ हविर्होतुर्यज॥४३॥

१. होता=यह यज्ञशील पुरुष अश्विनौ=प्राणापान को यक्षत्=अपने साथ सङ्गत करे। इस उद्देश्य से ये प्राणापान छागस्य=अजमोद ओषधि के हविषः=हवि का आत्ताम्=सेवन करें, अर्थात् इस ओषधि को मुख से भी ग्रहण करें और इसे अग्निकुण्ड में आहुत करके हविरूप में हुई-हुई इस औषध को श्वासवायु के साथ ग्रहण करें। २. अद्य=आज इस ओषधि के मध्यतः=मध्य से मेदः=इसका औषध-गुणसम्पन्न चिकना भाग, अर्थात् गूदा उद्भूतम्=बाहर निकाला है। पुरा=पूर्व इसके कि द्वेषोभ्यः=(द्विष अप्रीतौ) यह वायुमण्डल के प्रभाव से अप्रीतिजनक हो जाए, अर्थात् इसके रस का स्वाद कुछ विकृत हो जाए तथा पुरा=पूर्व इसके कि पौरुषेय्या गृभः=इसे कोई पुरुषों में होनेवाला रोग पकड़ ले, अर्थात् मक्खियों आदि के कारण इसमें किन्हीं रोगकृमियों का प्रवेश होने से पूर्व ही घस्ताम्=प्राणापान इसका भक्षण करें। सामान्यतः सेब को काटें तो कुछ देर रखने पर उसका वह चमकता हुआ सफेद रंग जाता रहता है, कुछ देर पड़े रहने पर उसके स्वाद में भी विकार आ जाता है, अतः सामान्य नियम यही ठीक है कि काटा और खाया। यहाँ भी ‘ओषधि का गूदा निकाला और उसका प्रयोग किया’ यही नियम रखना चाहिए। ३. नूनम्=निश्चय से घासे=खाने पर अज्राणाम्=(अज गतिक्षेपणयोः) रोगों को दूर फेंकनेवाली अथवा (भोजने अग्रे प्राप्तव्यानाम्-द०) भोजन में सबसे प्रथम प्रयोग करने योग्य (अज्राणां=अजराणां नवानां रुचिजनकानाम्-म०) भोजन में अधिकाधिक रुचि पैदा करनेवाली यवसप्रथमानाम्=अन्नों में मुख्य सुमत् क्षराणाम्=(सुष्ठु मदां क्षरः सञ्चलनं येषां-द०) उत्तम आनन्दों के देनेवाली शतरुद्रियाणाम्=सैकड़ों रोगों को रूलानेवाली, अर्थात् रोगों का विद्रावण करनेवाली अथवा (बहुमन्त्रैः सुतानाम्-म०) मन्त्रों से स्तवन की गई अग्निष्वात्तानाम्=(पाककाले पूर्वमग्निना सुशृतानाम्-म०) जिनका अग्नि पर ठीक परिपाक हुआ है, पीवोपवसनानाम्=(पवीः उपवसनं यैः) शरीर में स्थूल उपवसन का निर्माण करनेवाली, अर्थात् त्वचा के साथ-साथ सारे शरीर पर चर्बी के वस्त्र को प्राप्त करानेवाली, तथा पार्श्वतः=पार्श्वों के दृष्टिकोण से (कोख-प्रदेशों के स्वास्थ्य के विचार से) श्रोणितः=कटिप्रदेश के स्वास्थ्य के विचार से, शितामतः=बाहुप्रदेश के स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से अथवा आमाशय के स्वास्थ्य के विचार से, उत्सादतः=छेदनवाले प्रदेश के ठीक करने के उद्देश्य से, जहाँ कोई कटाव हो गया है, उसको ठीक करने के लिए, अंगात् अंगात्=एक-एक अङ्ग के दृष्टिकोण से अवत्तानाम्=काटे हुए अजमोद ओषधि के अंशों का करतः=ये प्राणापान

सेवन करते हैं। ४. एव=इस प्रकार अश्विना=ये प्राणापान हविः=उस अजमोद ओषधि का, जिसे कि अग्नि में डाला गया है और अतएव जो हविरूप हो गई है, उसका जुषताम्=सेवन करें। ५. होतः=हे यज्ञशील पुरुष! तू यज=इस ओषधि का यजन करनेवाला बन।

भावार्थ—हम प्राणापान के उत्कर्ष के लिए अजमोद ओषधि के मध्य से उद्धृत गूदे का ग्रहण करें। गूदे के पड़े रहने से उसके रस को विकृत न होने दें, उसपर रोगकृमियों का आक्रमण भी न होने दें। इसके प्रयोग से हमारे सब अङ्ग स्वस्थ होंगे। हम इससे हवन करें और इसे हविरूप में लेने का प्रयत्न करें।

ऋषिः—स्वस्त्यात्रेयः। देवता—विद्वांसः। छन्दः—याजुषीत्रिष्टुप्^क, स्वराडुत्कृतिः^र।

स्वरः—धैवतः^क, षड्जः^र॥

मेढासिंगी का प्रयोग व यजन

^कहोता यक्षुत् सरस्वतीं मेषस्य^र हविषऽआवयद्य मध्यतो मेदऽ उद्धृतं पुरा द्वेषोभ्यः पुरा पौरुषेय्या गृभो घसन्नूनं घासेऽअज्राणां यवसप्रथमानां^थ सुमत्क्षराणां^थ शतरुद्रियाणामग्निष्वात्तानां पीवोपवसनानां पार्श्वतः श्रोणितः शितामतऽउत्सादतोऽङ्गादङ्गादवत्तानां करदेवःसरस्वती जुषतां^थहविर्होतर्यज ॥४४॥

१. होता=यज्ञशील पुरुष सरस्वती=ज्ञानाधिदेवता को यक्षुत्=अपने साथ सङ्गत करे। इसी उद्देश्य से मेषस्य=मेढासिंगी ओषधि का तथा हविषः=अग्निहोत्र में इसका हवन होने पर सूक्ष्मरूप में हुई-हुई इस ओषधि का यह सरस्वती आवयत्=भक्षण करे, सेवन करे। २. अद्य =आज मध्यतः=इसके मध्य से मेदः=इसका औषध गुणयुक्त चिकना मध्य का भाग, अर्थात् गूदा उद्भृतम्=निकाला गया है। पुरा=पूर्व इसके कि द्वेषोभ्यः=यह विकृत होकर अप्रीतिजनक हो जाए, और पुरा=पूर्व इसके कि पौरुषेय्या गृभः=इसे कोई ऐसे कृमि पकड़ लें जो रोगों के कारण बन जाएँ, घसत्=सरस्वती इसका भक्षण करे। ३. नूनम्=निश्चय से घासे अज्राणाम्=भोजन में सबसे प्रथम प्रयोग करने योग्य, अथवा भोजन में रुचि को अधिकाधिक पैदा करनेवाली तथा खाने पर रोगों को दूर करनेवाली, यवस-प्रथमानाम्=अन्न में मुख्य, सुमत् क्षराणाम्=उत्तम आनन्दों को देनेवाली, शतरुद्रियाणाम्=शतशः रोगों को दूर करनेवाली, अग्निष्वात्तानाम्=अग्नि पर ठीक पकाई गई, पीवोपवसनानाम्=त्वचा के साथ-साथ स्थूल चर्बी के वस्त्र को प्राप्त करानेवाली, पार्श्वतः=पासों के दृष्टिकोण से, श्रोणितः=कटिप्रदेश के दृष्टिकोण से, शितामतः=बाहु के दृष्टिकोण से या आमाशय के दृष्टिकोण से, उत्सादतः=कटाव के दृष्टिकोण से, कटे हुए अङ्ग के भराव के विचार से, अङ्गात् अङ्गात्=अङ्ग-प्रत्यङ्ग के दृष्टिकोण से अवत्तानाम्=काटी हुई इस मेढासिंगी के मेदस् का सरस्वती करत्=सेवन करती है। ४. एवम्=इस प्रकार सरस्वती=यह ज्ञानाधिदेवता हविः=अग्निहोत्र में डाली गई और अतएव हविरूप बची हुई इस ओषधि को जुषताम्=प्रीतिपूर्वक सेवन करे। ५. होतः=हे यज्ञशील पुरुष! तू भी यज=इसका यजन कर।

भावार्थ—मस्तिष्क के उत्कर्ष के दृष्टिकोण से मेढासिंगी ओषधि के मध्य से उद्धृत गूदे का ग्रहण करें। वह गूदा विकृत रसवाला न हो जाए और न ही मक्खियाँ उसपर बैठकर उसे रोगकृमियों से परिपूर्ण कर दें। इसके प्रयोग व हवन से हमारे सब अङ्ग सुन्दर व स्वस्थ होंगे।

ऋषिः—स्वस्त्यात्रेयः। देवता—यजमानत्विजः। छन्दः—भुरिक्राजापत्योष्णिक्^क, भुरिगभिकृतिः^र।
स्वरः—ऋषभः॥

‘ऋषभक’ का प्रयोग व यजन

^कहोता यक्षुदिन्द्रमृषभस्य हविषऽ^रआवयदद्य मध्यतो मेदऽउद्धृतं पुरा द्वेषोभ्यः पुरा पौरुषेय्या गृभो घसन्नूनं घासेऽअज्ञाणां यवसप्रथमानां^१ सुमत्क्षराणां^२ शतरुद्रियाणां-मग्निष्वात्तानां पीवोपवसनानां पार्श्वतः श्रोणितः शितामतऽउत्सादतोऽङ्गादङ्गादवत्तानां करदेवमिन्द्रो जुषतां^३ हविर्होतर्यज ॥४५॥

१. होता=यज्ञशील पुरुष इन्द्रम्=आत्मशक्ति को यक्षत्=अपने साथ सङ्गत करता है और इसी उद्देश्य से वह इन्द्र ऋषभस्य=ऋषभ का भक्षण करता है। २. अद्य=आज इस ऋषभक के मध्यतः=मध्य से मेदः=औषध-गुणयुक्त चिकना गूदा उद्भूतम्=निकाला गया है। पुरा=पूर्व इसके कि द्वेषोभ्यः=यह विकृतरस होकर अप्रीतिजनक हो जाए और पुरा=पूर्व इसके कि पौरुषेय्या गृभः=मनुष्य को ग्रहण कर (पकड़) लेनेवाली कोई बीमारी के कृमि इसमें आ जाएँ, घसत्=इन्द्र इसका भक्षण करे। ३. नूनम्=निश्चय से घासे अज्ञाणाम्=भोजन में सबसे प्रथम प्रयोग करने योग्य, यवसप्रथमानाम्=अन्नों में मुख्य सुमत्क्षराणाम्=उत्तम आनन्दों को देनेवाली शतरुद्रियाणाम्=सैकड़ों रोगों को दूर करनेवाली, अग्निष्वात्तानाम्=आग पर पकाई गई, पीवोपवसनानाम्=त्वचा के साथ-साथ स्थूल चर्बी के वस्त्र को प्राप्त करानेवाली, पार्श्वतः=पार्श्वों के दृष्टिकोण से श्रोणितः=कटिप्रदेश के दृष्टिकोण से शितामतः=बाहुओं के दृष्टिकोण से अथवा आमाशय के दृष्टिकोण से, उत्सादतः=कटे हुए अङ्ग के दृष्टिकोण से अङ्गात् अङ्गात्=एक-एक अङ्ग के दृष्टिकोण से अवत्तानाम्=काटी हुई इस ऋषभक ओषधि के गूदे का करत्=यह इन्द्र सेवन करे। ४. एवम्=इस प्रकार इन्द्रः=आत्मशक्ति का विकास करनेवाला जितेन्द्रिय पुरुष हविः=अग्निहोत्र में हवन की गई इस ओषधि का जुषताम्=सेवन करे। ५. होतः=हे यज्ञशील पुरुष! यज=तू इस ऋषभक ओषधि का यज्ञ करनेवाला बन।

भावार्थ—आत्मशक्ति के विकास के लिए हम ऋषभक ओषधि का यज्ञ करें। हविरूप में उसका ग्रहण करें। उसका मुख से भी प्रयोग करें। यह ध्यान रखें कि वह पड़ी-पड़ी विकृत-रसवाली व रोगकृमियों से आक्रान्त न हो जाए। इसके प्रयोग से हमारा शरीर सर्वांग सुन्दर बनेगा।

ऋषिः—स्वस्त्यात्रेयः। देवता—अश्व्यादयः। छन्दः—उत्कृतिः^क, स्वराट्संकृतिः^र।
स्वरः—षड्जः^क, गान्धारः^र॥

वनस्पति+रशना (वानस्पतिक भोजन व दृढ़निश्चय)

^कहोता यक्षुद्वनस्पतिमभि हि पिष्टतमया रभिष्ठया रशनयाधित । यत्राश्विनोश्छागस्य हविषः प्रिया धामानि यत्र सरस्वत्या मेषस्य हविषः प्रिया धामानि यत्रेन्द्रस्यऽऋषभस्य हविषः प्रिया धामानि यत्राग्नेः प्रिया धामानि यत्र सोमस्य प्रिया धामानि यत्रेन्द्रस्य सुत्राम्णाः प्रिया धामानि ^रयत्र सवितुः प्रिया धामानि यत्र वरुणस्य प्रिया धामानि यत्र वनस्पतेः प्रिया पाथां^१सि यत्र देवानामाज्यपानां प्रिया धामानि यत्राग्नेर्होतुः प्रिया धामानि तत्रैतान् प्रस्तुत्यैवोपस्तुत्यैवोपावस्त्रक्षुद्रभीयसऽइव कृत्वी करदेवं देवो

वनस्पतिर्जुषतां हविर्होतर्यज ॥४६॥

१. होता=त्यागशील पुरुष वनस्पतिम्=वनस्पति को यक्षत्=अपने साथ सङ्गत करता है। यह सदा वानस्पतिक भोजन ही करता है। २. इस वानस्पतिक भोजन के साथ यह हि=निश्चय से रशनया=रशना से, मेखला से, दृढ़निश्चय की प्रतीकभूत इस तगड़ी (Gridle) से अपने को अभ्यधित=धारण करता है, अर्थात् दृढ़ निश्चय करता है। यह मेखला कैसी है? (क) पिष्टतमया=(अत्यन्त पिष्ट, सुरूपा पिष्टम्-म०) यह जीवन को अत्यन्त सुरूप बनानेवाली है तथा रभिष्ठया=काम-क्रोधादि पशुओं का अत्यन्त नियमन करनेवाली है (रभते पशून् नियमयति-म०) और (समर्थया) अत्यन्त शक्तिशाली बनानेवाली है। वस्तुतः दृढ़निश्चय कर लेने पर यह अपने जीवन को अत्यन्त सुन्दर व सामर्थ्यसम्पन्न बना पाता है। ३. यह वानस्पतिक भोजन तथा मेखला वह है यत्र=जहाँ (क) अश्विनोः=प्राणापान के छागस्य हविषः=अजमोद ओषधि की हवि के प्रिया धामानि=प्रिय तेज हैं, अर्थात् वानस्पतिक भोजन व दृढ़निश्चय के साथ जब इस अजमोद ओषधि का हविरूप में प्रयोग होता है तब प्राणापान की शक्ति को खूब बढ़ानेवाली होती है। (ख) यत्र=जहाँ सरस्वत्याः=ज्ञानाधिदेवता के साथ सम्बद्ध मेषस्य हविषः=मेढ्रासिङ्गी ओषधि की हवि के प्रिया धामानि=प्रिय तेज हैं (ग) यत्र=जहाँ इन्द्रस्य=आत्मशक्ति-सम्पन्न जितेन्द्रिय पुरुष के साथ सम्बद्ध ऋषभस्य हविषः=ऋषभक ओषधि की हवि के प्रिया धामानि=प्रिय तेज हैं। (घ) यत्र=जहाँ अग्नेः प्रिया धामानि=अग्नि तत्त्व के प्रिय तेज हैं, अर्थात् ये वानस्पतिक भोजन व दृढ़निश्चय मनुष्य को अग्नि के समान तेजस्वी बनाते हैं। (ङ) यत्र=जहाँ सोमस्य प्रिया धामानि=सोम के प्रिय तेज हैं, अर्थात् यह जहाँ अग्नि के समान तेजस्वी होता है वहाँ सोम के समान शान्त होता है (सोम=चन्द्रमा)। (च) यत्र=जहाँ सुत्राम्णः इन्द्रस्य=रोगों से अपने को पूर्णरूप से रक्षित करनेवाले जितेन्द्रिय पुरुष के प्रिया धामानि=प्रिय तेज हैं, अर्थात् इनके होने पर मनुष्य नीरोग व जितेन्द्रिय बनता है। (छ) यत्र=जहाँ सवितुः=उत्पादक के प्रिया धामानि=प्रिय तेज हैं, अर्थात् वानस्पतिक भोजन व दृढ़निश्चय मनुष्य को निर्माणात्मक कामों में लगनेवाला बनाता है। (ज) यत्र=जहाँ वरुणस्य=द्वेष-निवारण की देवता के प्रिया धामानि=प्रिय तेज हैं, अर्थात् वानस्पतिक भोजन व दृढ़निश्चय मनुष्य को द्वेष से ऊपर उठा देते हैं। (झ) यत्र=जहाँ वनस्पतेः=वनस्पति के प्रिया पाथांसि=प्रिय अन्न हैं, जो अन्न शरीर के पूर्णतया रक्षक हैं। (ञ) यत्र=जहाँ आज्यपानाम्=घृत का पान करनेवाले देवानाम्=दिव्य वृत्तिवाले पुरुषों के प्रिया धामानि=प्रिय तेज हैं, अर्थात् वनस्पति भोजन करनेवाला दृढ़निश्चयी पुरुष आज्य का पान करनेवाले देवों के समान बनता है। (ट) यत्र=जहाँ होतुः अग्नेः=दानपूर्वक अदन करनेवाले प्रगतिशील पुरुष के प्रिया धामानि=प्रिय तेज हैं। ४. तत्र=वहाँ अर्थात् उस वनस्पति व मेखला में, अर्थात् इनके होने पर एतान्=इन 'छाग-मेष व ऋषभ' को प्रस्तुत्य इव=अग्निकुण्ड में प्रस्तुत-सा करके, अर्थात् प्राप्त कराके उपस्तुत्य इव=अग्नि द्वारा सूक्ष्म कणों के रूप में अपने समीप प्राप्त कराके रभीयसः इव कृत्वी=बड़ा शक्तिशाली बनाकर उपावस्रक्षत्=अपने समीप, अपने शरीर में स्थापित करे (स्थापयतु-म०)। ५. यह देवः वनस्पतिः=दिव्य गुणोंवाला वनस्पति एवं करत्=ऐसा ही करे, अर्थात् हमारे जीवन को उल्लिखित तेजों से युक्त करे। ६. इसके लिए होता को चाहिए कि हविः जुषताम्=वह हवि का सेवन करनेवाला बने। प्रभु कहते हैं कि होतः=हे यज्ञशील पुरुष! तू यज=यज्ञ करनेवाला बन।

भावार्थ—जीवन को सुन्दर व सामर्थ्यसम्पन्न बनाने के लिए आवश्यक है कि वानस्पतिक भोजन का अङ्गीकार करें और दृढ़निश्चयी बनें।

ऋषिः—स्वस्त्यात्रेयः। देवता—अश्व्यादयः। छन्दः—भुरिगाकृतिः^क, आकृतिः^र। स्वरः—पञ्चमः॥

इष्टकामधुक् (स्विष्टकृत्) अग्नि

^कहोता यक्षदग्निश्चस्विष्टकृतमयाडग्निश्चिनोश्छागस्य हविषः प्रिया धामान्ययाट् सरस्वत्या मेषस्य हविषः प्रिया धामान्ययाडिन्द्रस्यऽऋषभस्य हविषः प्रिया धामान्ययाडग्नेः प्रिया धामान्ययाट् सोमस्य प्रिया धामान्ययाडिन्द्रस्य सुत्राम्णाः प्रिया धामान्ययाट् सवितुः प्रिया धामान्ययाड् वरुणस्य प्रिया धामान्ययाड् वनस्पतेः प्रिया पाथाश्चस्ययाड् देवानामाज्यपानां प्रिया धामानि यक्षदग्नेर्होतुः प्रिया धामानि यक्षत् स्वं महिमानमार्यजतामेज्याऽ इषः कृणोतु सोऽअध्वरा जातवेदा जुषेताश्चहविर्होतर्यज ॥४७॥

१. होता=यज्ञशील पुरुष स्विष्टकृतम्=उत्तम इष्टों को सिद्ध करनेवाले अग्निम्=इस यज्ञाग्नि का यक्षत्=अपने साथ मेल करता है, अर्थात् यज्ञ को अपने साथ जोड़ लेता है, २. सहयज्ञ बनने पर अग्निः=यह यज्ञाग्नि (क) अश्विनोः=प्राणापान के साथ सम्बद्ध छागस्य हविषः=अजमोद ओषधि की हवि के प्रिया धामानि=प्रिय तेजों को अयाट्=हमारे साथ सङ्गत करता है (ख) सरस्वत्या=ज्ञानाधिदेवता से सम्बद्ध मेषस्य हविषः=मेढासिंगी ओषधि की हवि के प्रिया धामानि=प्रिय तेजों को अयाट्=हमारे साथ सङ्गत करता है। (ग) इन्द्रस्य=आत्मशक्ति के साथ सम्बद्ध ऋषभस्य हविषः=ऋषभक ओषधि की हवि के प्रिया धामानि=प्रिय तेजों को अयाट्=हमारे साथ सम्बद्ध करता है। (घ) अग्नेः प्रिया धामानि अयाट्=अग्नि तत्त्व के प्रिय तेजों को हमारे साथ सम्बद्ध करता है। (ङ) सोमस्य प्रिया धामानि अयाट्=सोम के प्रिय तेजों को हमारे साथ सम्बद्ध करता है। (च) सुत्राम्णाः इन्द्रस्य प्रिया धामानि अयाट्=अपनी पूर्णरूप से रक्षा करनेवाले जितेन्द्रिय पुरुष के प्रिय तेजों को हमारे साथ सङ्गत करता है। (छ) सवितुः प्रिया धामानि अयाट्=यह निर्माण करनेवाले सविता के प्रिय तेजों को हमारे साथ सङ्गत करता है। (ज) निर्माण में लगाये रखकर वरुणस्य=द्वेष-निवारण की देवता के प्रिया धामानि=प्रिय तेजों को अयाट्=हमारे साथ सङ्गत करता है (ञ) यह वनस्पतेः=वनस्पति के प्रिया पाथांसि=प्रिय अन्नों को अयाट् =हमारे साथ सङ्गत करता है। (ट) आज्यपानाम्=घृत का पान करनेवाले देवानाम्=दिव्य वृत्तिवाले पुरुषों के प्रिया धामानि अयाट्=प्रिय तेजों को हमारे साथ सङ्गत करता है। (ठ) यह होतुः=दानपूर्वक अदन करनेवाले अग्नेः=प्रगतिशील पुरुष के प्रिया धामानि=प्रिय तेजों को यक्षत्=हमारे साथ सङ्गत करता है। ३. इस प्रकार यज्ञाग्नि के द्वारा उल्लिखित प्रिय तेजों को प्राप्त करके मन्त्र का ऋषि 'आत्रेय' स्वं महिमानम्=अपनी महिमा को यक्षत्=अपने साथ सङ्गत करे। ४. इस महिमा को पूर्णतया प्राप्त करने के लिए एज्याः=आ इज्याः=समन्तात् यष्टुं योग्यं, अर्थात् सब प्रकार से अपने साथ मेल करने के योग्य इषः=इच्छाओं को आयजताम्=अपने साथ सङ्गत करे, अर्थात् सदा उत्तम इच्छाओंवाला हो। ५. सः जातवेदाः=यह ज्ञानी पुरुष अध्वरा कृणोतु=सदा हिंसारहित यज्ञों का करनेवाला हो। अहिंसा ही मूलधर्म है। इस प्रकार यज्ञिय जीवन बिताता हुआ वह हविः जुषेताम्=त्यागपूर्वक भोजन का सेवन करे, सदा यज्ञशेष ही खाये। ६. प्रभु कहते हैं होतः=हे यज्ञशील पुरुष! तूने यज=यजन करनेवाला होना है।

भावार्थ—यज्ञाग्निं स्विष्टकृत् है। यज्ञ को अपनाकर हम सब तेजों को अपनाएँ। अपनी वास्तविक महिमा को प्राप्त करें। अहिंसा को मूलधर्म समझें।

ऋषिः—स्वस्त्यात्रेयः। देवता—सरस्वत्यादयः। छन्दः—त्रिष्टुप्। स्वरः—धैवतः॥

आँखों की तेजस्विता

देवं बर्हिः सरस्वती सुदेवमिन्द्रेऽअश्विना ।

तेजो न चक्षुरक्ष्योर्बर्हिषा दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥४८॥

१. सरस्वती=ज्ञान की अधिदेवता देवम्=दिव्य गुणोंवाले बर्हिः=वासनाशून्य हृदय को धारण करती है, अर्थात् ज्ञान से मनुष्य का हृदय दिव्य व वासनारहित होता है। २. अश्विना=प्राणापान इन्द्रे=इन्द्रियों के अधिष्ठाता जितेन्द्रिय पुरुष में सुदेवम्=उस सर्वोत्कृष्ट देव प्रभु को स्थापित करते हैं, अर्थात् प्राणापान की साधना से चित्तवृत्ति निर्मल होकर प्रभु-दर्शन के योग्य बन जाती है। ३. इस साधक की अक्ष्योः=आँखों में तेजः=तेजस्विता होती है न=और चक्षुः=दर्शनशक्ति होती है। इसकी आँखों से तेज टपकता है। ४. सरस्वती तथा अश्विनौ=ज्ञानाधिदेवता तथा प्राणापान इसके अन्दर बर्हिषा=वासनाशून्य हृदय के साथ इन्द्रियम्=इन्द्रियों की शक्ति को दधुः=धारण करते हैं। ५. वसुवने=(वसुवननाय) निवासक तत्त्वों की प्राप्ति के लिए वसुधेयस्य=(वसुधेयं यस्मिन्-द०) सब निवासक तत्त्वों के आधारभूत सोम=(वीर्य) का व्यन्तु=पान करें। वीर्य को शरीर में ही व्याप्त करने से सब वसुओं की शरीर में स्थिति होती है। ६. प्रभु मन्त्र के ऋषि 'स्वस्त्यात्रेय' से कहते हैं कि इस सबको सिद्ध करने के लिए तू यज=यज्ञशील बन। देवपूजा के द्वारा ज्ञान प्राप्त कर, विद्वानों के सङ्ग व दान की वृत्ति से तू अपने हृदय को वासनाशून्य बना।

भावार्थ—१. ज्ञान से मन दिव्य व वासनाशून्य बनता है। २. प्राणापान की साधना हृदय को एकाग्र करके प्रभु-दर्शन के योग्य बनाती है। ३. इस साधक की आँखें तेजस्वी व दर्शनशक्ति-सम्पन्न होती हैं। ४. वासनाशून्य हृदय के साथ इसकी सब इन्द्रियाँ सशक्त होती हैं। ५. वीर्यरक्षा से निवासक तत्त्वों का उपचय होता है। ६. इस सबके लिए हमें यज्ञशील बनना चाहिए।

ऋषिः—स्वस्त्यात्रेयः। देवता—अश्व्यादयः। छन्दः—ब्राह्म्युष्णिक्। स्वरः—ऋषभः॥

घ्राणेन्द्रिय का बल

देवीद्वारोऽअश्विना भिषजेन्द्रे सरस्वती ।

प्राणं न वीर्यं नसि द्वारो दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥४९॥

१. इन्द्रे=जितेन्द्रिय पुरुष में भिषजा अश्विना=सब रोगों का प्रतीकार करनेवाले वैद्यभूत प्राणापान तथा सरस्वती=ज्ञानाधिदेवता देवीः द्वारः=दिव्य द्वारों को दधुः=स्थापित करते हैं, अर्थात् प्राणापान की साधना तथा ज्ञान की आराधना करने पर 'मुख, पायु तथा उपस्थ व ब्रह्मरन्ध्र' आदि सब द्वार ठीक से अपना-अपना कार्य करनेवाले होते हैं। २. ये अश्विना=प्राणापान तथा सरस्वती=ज्ञान नसि=घ्राणेन्द्रिय में प्राणम्=घ्राणशक्ति को तथा वीर्यम्=तेजस्विता को स्थापित करते हैं। ३. नासिका में घ्राणशक्ति व वीर्य की स्थापना के साथ ये प्राणापान व ज्ञान द्वारः=सब द्वारों को तथा इन्द्रियम्=उन इन्द्रियद्वारों में उस-उस शक्ति को दधुः=धारण करते हैं। ४. वसुवने=(वसुवननाय) निवासक तत्त्वों की प्राप्ति के लिए वसुधेयस्य=वीर्य का व्यन्तु=पान करें, इसे शरीर में ही व्याप्त करने का प्रयत्न करें।

५. प्रभु कहते हैं कि इस सबके लिए तू यज=यज्ञशील बन, तेरी वृत्ति भोगप्रवण न हो।

भावार्थ—प्राणापान की साधना तथा ज्ञान की आराधना से हमारे सब इन्द्रिय-द्वार दिव्य हों। हमारी नासिका में घ्राणेन्द्रिय शक्ति व वीर्य हो। हम निवासक तत्त्वों की प्राप्ति के लिए वीर्य को शरीर में ही व्याप्त करें तथा यज्ञशील बनकर भोगवृत्ति से ऊपर उठें।

ऋषिः—स्वस्त्यात्रेयः। देवता—अश्व्यादयः। छन्दः—त्रिष्टुप्। स्वरः—धैवतः॥

मुख में वाक्शक्ति

देवीऽउषासावश्विना सुत्रामेन्द्रे सरस्वती।

बलं न वाचमास्युऽउषाभ्यां दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥५०॥

१. देवी=दिव्य गुणों से युक्त व देदीप्यमान उषासौ=(सायं-प्रातः संधिवेले-द०) सायं व प्रातः के सन्धिकाल तथा सुत्रामा=उत्तमता से त्राण व रक्षण करनेवाले अश्विना=प्राणापान तथा सरस्वती=ज्ञानाधिदेवता इन्द्रे=इन्द्रियों के अधिष्ठाता पुरुष के आस्ये=मुख में बलम्=बल को न=और वाचम्=वाणी की शक्ति को धारण करते हैं। २. ये प्राणापान तथा ज्ञान उषाभ्याम्=इन सन्धिवेलाओं के साथ इसमें इन्द्रियम्=सब इन्द्रियों के बल को दधुः=धारण करते हैं। प्रातः-सायं वाणी उद्गीथ का गायन करती है और यह गायन उसे बल प्राप्त कराता है। ३. वसुवने=निवासक तत्त्वों को प्राप्त करने के लिए वसुधेयस्य=वीर्य का व्यन्तु=पान करें, अर्थात् उसे शरीर में ही व्याप्त करने का प्रयत्न करें। ४. इसी दृष्टिकोण से प्रभु कहते हैं कि यज=हे मनुष्य! तू यज्ञशील बन।

भावार्थ—प्रातः-सायं उद्गीथ का गायन करनेवाली वाणी प्राणापान की साधना से तथा ज्ञान की आराधना से सबल बनती है।

ऋषिः—स्वस्त्यात्रेयः। देवता—अश्व्यादयः। छन्दः—त्रिष्टुप्। स्वरः—धैवतः॥

कानों में यशस्वी श्रोत्रशक्ति

देवी जोष्ट्री सरस्वत्यश्विनेन्द्रमवर्धयन्।

श्रोत्रं न कर्णयोर्यशो जोष्ट्रीभ्यां दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥५१॥

१. देवी जोष्ट्री=(देवी जोष्ट्री अहोरात्रे-नि० ९।४१) ये दिन और रात सरस्वती=ज्ञानाधिदेवता तथा अश्विना=प्राणापान-ये सब इन्द्रम्=इन्द्रियों के अधिष्ठाता पुरुष को अवर्धयन्=बढ़ाते हैं। वे दिन-रात यहाँ 'देवी जोष्ट्री' नाम से कहे गये हैं, जिनमें मनुष्य सम्पूर्ण दिन प्रीतिपूर्वक अपने कर्तव्यों का सेवन करता हुआ रात्रि में स्वप्न का आनन्द लेता है। वस्तुतः ऐसे दिन-रात ही मनुष्य की वृद्धि का कारण बनते हैं। २. ये कर्णयोः=कानों में श्रोत्रम्=सुनने की शक्ति को न=और यशः=यश को दधुः=स्थापित करते हैं। 'यशः' शब्द वेद में=सौन्दर्य व ज्योति (Beauty and Splendour) के लिए आता है। इस साधक के कानों में वे ज्ञान की वाणियाँ प्राप्त होती हैं जिनसे वह इस संसार में प्रभु की ज्योति व सौन्दर्य को देखनेवाला बनता है। ३. ये प्राणापान तथा ज्ञान जोष्ट्रीभ्याम्=इन प्रीतिपूर्वक होनेवाले कर्मों से युक्त दिन-रात के साथ इन्द्रियम्=सब इन्द्रियों की शक्ति को दधुः=स्थापित करते हैं। ४. वसुवने=निवासक तत्त्वों को प्राप्त करने के लिए वसुधेयस्य=वीर्य का व्यन्तु=पान करें, इसे शरीर में व्याप्त करें। ५. इस सबके लिए प्रभु कहते हैं कि हे मनुष्य! तू यज=यज्ञशील बन।

भावार्थ—हमारे दिन-रात 'देवी जोष्ट्री' हों। हम उनमें प्रीतिपूर्वक अपने कर्त्तव्यों के करने में लगे रहें। इससे हमें कानों में यशस्वी श्रोत्रशक्ति प्राप्त हो। हमारी सब इन्द्रियों सबल हों। हम वीर्य की रक्षा करें और यज्ञशील हों।

ऋषिः—स्वस्त्यात्रेयः। देवता—अश्व्यादयः। छन्दः—अतिजगती।

स्वरः—निषादः॥

स्तनों में शुक्र और ज्योति

देवीऽऊर्जाहुती दुधे सुदुधेन्द्रे सरस्वत्यश्विना भिषजावतः।

शुक्रं न ज्योति स्तनयोराहुती धत्तऽइन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥५२॥

१. **देवी ऊर्जाहुती**=(देवी ऊर्जाहुती द्यावापृथिव्यौ—नि० ९।४२) दिव्य गुणोंवाले बल व प्राणशक्ति के वर्धक अन्न देनेवाले ये द्युलोक व पृथिवीलोक **दुधे**=हमारे मनोरथों का पूरण करनेवाले हैं, वस्तुतः ये द्युलोक व पृथिवीलोक हमारे पिता व माता के तुल्य हैं (द्यौष्पिता, पृथिवी माता)। माता-पिता सन्तान का पूरण करते हैं, ठीक इसी प्रकार ये द्युलोक व पृथिवीलोक हमारा पूरण करते हैं। २. **इन्द्रे**=इन्द्रियों के अधिष्ठाता पुरुष में **सरस्वती**=ज्ञानाधिदेवता **सुदुधा**=बहुत उत्तमता से पूरण करनेवाली होती है। ज्ञान सब दोषों को दूर करके सचमुच हमारा सुन्दर पूरण करता है। ३. **अश्विना**=ये प्राणापान **भिषजा**=सब रोगों का प्रतीकार करते हैं, नासिका में दायें स्वर सूर्यस्वर है, यह शरीर में प्राणशक्ति को भरता है और बायाँ स्वर चन्द्रस्वर है यह अपान को ठीक रखता है, अतः शरीर में ये प्राणापान 'सूर्य और चन्द्रमा' हैं। दोनों का समन्वय होने पर किसी प्रकार का रोग नहीं होता। केवल सूर्यस्वर होता तो उष्णता व अम्लता बढ़कर शरीर समाप्त हो जाता तथा केवल चन्द्रस्वर होने पर कोढ़ के रोग बढ़कर शरीर क्षयी हो जाता। इसी दृष्टिकोण से 'अश्विना' सदा द्विवचन में आता है। ये दोनों मिलकर ही 'भिषजा' है। ये रोगों का प्रतीकार करनेवाले प्राणापान **अवतः**=रक्षा करते हैं। मनुष्य को रोगों का शिकार नहीं होने देते। ४. जब द्युलोक व पृथिवीलोक हमारा उत्तम अन्नों से पूरण करनेवाले होते हैं, तब ज्ञान हमारी कमियों को दूर करके हमारा उत्तम पूरण करनेवाला होता है। जब ये प्राणापान भिषक् बनकर हमारी रक्षा करते हैं उस समय ये **आहुती**=(ऊर्जाहुती) द्यावापृथिवी **स्तनयोः**=माता बननेवाली युवती के स्तनों में **शुक्रम्**=वीर्यसम्पन्न **न**=तथा **ज्योतिः**=ज्ञान के प्रकाश से युक्त दुग्ध को **धत्त**=स्थापित करते हैं। इस माता के स्तनों का दूध सन्तान को वीर्यसम्पन्न व ज्ञानसम्पन्न बनाता है। ५. ये **आहुती**=(ऊर्जाहुती) द्यावापृथिवी **इन्द्रियं धत्त**=प्रत्येक इन्द्रिय के बल का स्थापन करते हैं। ६. **वसुवने**=निवासक तत्त्वों को प्राप्त करने के लिए **वसुधेयस्य**=वीर्य का **व्यन्तु**=पान करें। शरीर में व्याप्त होकर यह वीर्य ही अङ्ग-प्रत्यङ्ग को सशक्त करता है। ७. ऐसा हो सके इसके लिए प्रभु कहते हैं कि हे पुरुष! तू **यज**=यज्ञशील बन।

भावार्थ—द्यावापृथिवी दिव्य अन्नों से हमारा पूरण करते हैं। ज्ञान दोषों को दूर करके हमारा उत्तम पूरण करता है। प्राणापान हमारे वैद्य हैं और रोगों से हमारा रक्षण करते हैं। ऐसा होने पर माता के स्तनों में शक्ति व ज्ञानसम्पन्न दूध होता है। ये द्यावापृथिवी हमारी सब इन्द्रियों को सशक्त बनाते हैं। हम वीर्य की रक्षा करें और उसके लिए यज्ञशील बन भोगवृत्ति से ऊपर उठें।

ऋषिः—स्वस्त्यात्रेयः। देवता—अश्व्यादयः। छन्दः—भुरिगतिजगती। स्वरः—निषादः॥

दीप्ति व मति से पूर्ण हृदय

देवा देवानां भिषजा होतारविन्द्रमश्विना। वषट्कारैः सरस्वती त्विषिं न हृदये मतिःहोतृभ्यां दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज॥५३॥

१. देवा होतारौ=दिव्य गुणोंवाले भिषज वरुण=(होतारौ मित्रावरुणौ) स्नेह की देवता तथा द्वेष-निवारण की देवता तथा देवानां भिषजा=देवताओं के वैद्य ये अश्विना=प्राणापान इन्द्रम्=इन्द्रियों के अधिष्ठाता जीव को अवतः=रक्षित करते हैं (अवतः क्रिया ऊपर के मन्त्र से अनुवृत्त हुई है।) २. वषट्कारैः=(श्रेष्ठैः कर्मभिः-द०) यज्ञादि उत्तम कर्मों के साथ सरस्वती=ज्ञानाधिदेवता त्विषिम्=दीप्ति को न=और होतृभ्याम्=मित्रावरुण के साथ अर्थात् स्नेह व द्वेषनिवारण के साथ हृदये=हृदय में मतिम्=मननशीलता को दधुः=स्थापित करते हैं। ३. मन्त्र में 'वषट्कारैः' शब्द श्रेष्ठ कर्मों का वाचक होकर हाथों से होनेवाले कर्मकाण्ड का प्रतीक है। 'सरस्वती' ज्ञानाधिदेवता मस्तिष्क के ज्ञानकाण्ड का संकेत करती है और 'होतारौ' व 'होतृभ्यां' शब्द मित्रावरुण के वाचक होकर हृदय में स्नेह व द्वेषाभाव का प्रतिपादन करते हुए हार्दिक पवित्रता की सूचना दे रहे हैं। यही हृदय प्रभु की सच्ची उपासना कर पाता है। एवं, ये सब कर्म, ज्ञान व उपासना द्वारा इन्द्रियं दधुः=इस 'आत्रेय' में अङ्ग-प्रत्यङ्ग के बल को धारण करते हैं। ४. वसुवने=निवासक तत्त्वों की प्राप्ति के लिए ये वसुधेयस्य=वीर्य का व्यन्तु=पान करें, शरीर में व्यापन करें। ५. प्रभु कहते हैं कि हे 'आत्रेय' तू यज=यज्ञशील बन।

भावार्थ—स्नेह व द्वेषाभाव की दिव्य वृत्तियाँ (मित्रावरुण देव), प्राणापानरूप दिव्य वैद्य (अश्विना देवानां भिषजा) यज्ञादि उत्तम कर्म तथा ज्ञान हमारे जीवन में दीप्ति को, मति को तथा अङ्ग-प्रत्यङ्ग की शक्ति को धारण करें। हम उत्तम निवास के लिए वीर्य को शरीर में ही व्याप्त करें और यज्ञशील हों।

ऋषिः—स्वस्त्यात्रेयः। देवता—अश्व्यादयः। छन्दः—त्रिष्टुप्। स्वरः—धैवतः॥

केन्द्र-शक्ति

देवीस्तिस्त्रस्तिस्त्रो देवीरश्विनेडा सरस्वती।

शूषं न मध्ये नाभ्यामिन्द्राय दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज॥५४॥

१. देवीः तिस्रः=तीन देवियाँ जो तिस्रः=तीनों देवीः=सचमुच दिव्य गुणोंवाली हैं। उनमें प्रथम अश्विना=(श्रोत्रे अश्विनौ-श० १२।११।१३) श्रोत्र हैं, अर्थात् श्रोत्रों से सुनी जानेवाली 'भारती' है। वाणी जिसको श्रोत्रों से सुना जाता है उसे यहाँ 'अश्विनौ'=श्रोत्रशब्द से इसलिए स्मरण किया कि हम वाणी से सुनने के महत्त्व को समझें, बोलने का उतना महत्त्व नहीं है। वस्तुतः सुनी जाती हुई वाणी हमारा भरण करनेवाली सचमुच 'भारती' होती है। दूसरी 'इडा'=श्रद्धा है, इसका स्थान हृदय में है। तीसरी सरस्वती =ज्ञानाधिदेवता है, जिसका निवास मस्तिष्क में है। २. ये तीनों देवियाँ मध्ये नाभ्याम्=शरीर के केन्द्रभूत नाभि में शूषम्=सब अवाञ्छनीय तत्त्वों के शोषक बल को दधुः=धारण करती हैं न=तथा इन्द्राय=इन्द्रियों के अधिष्ठाता पुरुष के लिए इन्द्रियम्=इन्द्रियों की शक्ति को धारण करती हैं। ३. वसुवने=निवासक तत्त्वों की प्राप्ति के लिए ये वसुधेयस्य=वीर्य का व्यन्तु=शरीर में व्यापन करें। ४. इस सबके लिए प्रभु जीव से कहते हैं कि तू यज=यज्ञशील बन।

भावार्थ—‘अश्विनौ’=श्रोत्रों से सुनी जानेवाली वाणी (भारती), श्रद्धा (इडा) तथा ज्ञान (सरस्वती) हमारी नाभि में उस केन्द्रशक्ति को धारण करते हैं, जिससे सब अवाञ्छनीय तत्त्वों का शोषण होता है। हम उत्तम निवास के लिए वीर्य का शरीर में व्यापन करें और यज्ञशील हों।

ऋषिः—स्वस्त्यात्रेयः। देवता—अश्व्यादयः। छन्दः—स्वराट्शक्वरी। स्वरः—धैवतः॥

अमृतं जनित्रम्

देवऽइन्द्रो नराशंसस्त्रिवरूथः सरस्वत्याश्विभ्यामीयते रथः। रेतो न रूपममृतं जनित्रमिन्द्राय त्वष्टा दधदिन्द्रियाणि वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥५५॥

१. देवः=सारे संसार के व्यवहार को सिद्ध करनेवाला इन्द्रः=परमेश्वर्यशाली त्रिवरूथः=हमारे शरीर (इन्द्रियाँ), मन व बुद्धि तीनों का रक्षण करनेवाला (वरूथ=Cover=आवरण) अथवा शरीर, मन व बुद्धि की तीनों सम्पत्तियों को देनेवाला (वरूथ=Wealth) नराशंसः=मनुष्यों से समन्तात् शंसन किया जाता हुआ प्रभु (क) सरस्वत्या=ज्ञानाधिदेवता से तथा अश्विभ्याम्=प्राणापान की शक्ति से रथः ईयते=यह शरीर-रथ गतिमय किया जाता है, अर्थात् उस प्रभु ने यह शरीररूप रथ हमें दिया है और इससे हमें परमात्मा की ओर ही पहुँचना है, अतः यह रथ परमात्मा का है (जैसे यह गाड़ी हरिद्वार की है, अर्थात् हरिद्वार जानेवाली है) उसका यह रथ ज्ञान व प्राणापान से चलता है। प्राणापान इस गाड़ी के इञ्जन के जल हैं तो ज्ञान ‘अग्नि’ है। इनसे यह रथ चलता है। ३. एवं, जब हम ज्ञान व प्राणापान की शक्ति से शरीररूप रथ को प्रभु की ओर ले-चलते हैं तब त्वष्टः=सब दिव्य गुणों का निर्माता वह प्रभु इन्द्राय=इस जितेन्द्रिय पुरुष के लिए रेतः=शक्ति को न=और रूपम्=स्वास्थ्य के सौन्दर्य को, जनित्रम्=सब शक्तियों के विकास को, अमृतम्=नीरोगता को तथा इन्द्रियाणि=अङ्ग-प्रत्यङ्ग की शक्ति को दधत्=धारण करता है। ४. वसुवने =निवासक तत्त्वों की प्राप्ति के लिए वसुधेयस्य=वीर्य का व्यन्तु=शरीर में व्यापन करें। ५. प्रभु कहते हैं कि इस सबके लिए तू यज=यज्ञशील हो।

भावार्थ—वे प्रभु ‘देव-इन्द्र-नराशंस व त्रिवरूथ’ हैं। प्रभु का यह रथ ज्ञान व प्राणापान से चलता है। वे निर्माता प्रभु ‘रेतस्, रूप, अमृत, जनित्र व इन्द्रियशक्तियों’ का धारण करते हैं। निवासक तत्त्वों के विजय के लिए हम शरीर में वीर्य का व्यापन करें और यज्ञशील हों।

ऋषिः—स्वस्त्यात्रेयः। देवता—अश्व्यादयः। छन्दः—निचृदत्यष्टिः। स्वरः—गान्धारः॥

हिरण्यपर्ण वनस्पति

देवो देवैर्वनस्पतिर्हिरण्यपर्णोऽश्विभ्यां सरस्वत्या सुपिप्पलऽइन्द्राय पच्यते मधु। ओजो न जूतिर्ऋषभो न भामं वनस्पतिर्नो दधदिन्द्रियाणि वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥५६॥

१. यहाँ संसार को एक वृक्ष के रूप में कहा गया है। यह वनस्पतिः=संसारवृक्ष देवः=दिव्य गुणोंवाला है और हमारे सारे व्यवहार को सिद्ध करनेवाला है (दिव्य व्यवहारे)। २. यह संसार-वृक्ष देवैः=सूर्यादि सब दिव्य पदार्थों से हिरण्यपर्णः=स्वर्ण के समान देदीप्यमान पत्तोंवाला है। (हिरण्य=हितरमणीय, पर्ण=पृ पालनपूरणयोः) अथवा बड़े हित व रमणीय प्रकार से हमारा पालन व पूरण करनेवाला है। ३. यह अश्विभ्याम्=प्राणापान की साधना के साथ तथा सरस्वत्या=ज्ञानाधिदेवता के साथ सुपिप्पलः=उत्तम फलोंवाला है, अर्थात् इस संसार-वृक्ष के फलों का प्रयोग ज्ञानपूर्वक तथा प्राणापान की साधना के साथ किया जाए तो ये फल बड़े उत्तम प्रमाणित होते हैं अथवा ज्ञान व प्राणापान इस संसार-वृक्ष

के उत्तम फल हैं। ४. इन्द्रस्य=जितेन्द्रिय पुरुष के लिए यह मधु=अत्यन्त माधुर्ययुक्त फलों को पच्यते=परिपक्व करता है। ५. यह ऋषभः वनस्पतिः=अत्यन्त श्रेष्ठ वनस्पति नः=हममें ओजः=ओजस्विता को जूतिः=स्फूर्ति को न=और भामम्=तेजस्विता को न=तथा इन्द्रियाणि=सब इन्द्रियों की शक्ति को दधत्=धारण करता है। ६. वसुवने=निवासक तत्त्वों को प्राप्त करने के लिए वसुधेयस्य व्यन्तु=वीर्य का शरीर में व्यापन करे। ३. प्रभु कहते हैं कि हे आत्रेय! इस सबके लिए तू यज=यज्ञशील हो।

भावार्थ—यह संसार-वृक्ष सूर्यादि देवों के साथ सचमुच दिव्य गुणोंवाला है। यह प्राणापान व ज्ञानरूप उत्तम फलोंवाला है। जितेन्द्रिय पुरुष के लिए यह मधुर-ही-मधुर है। यह ओजस्विता, स्फूर्ति व तेजस्विता को देनेवाला है। हम उत्तम निवास के लिए वीर्य को शरीर में व्याप्त करें, यज्ञशील हों।

ऋषिः—स्वस्त्यात्रेयः। देवता—अश्व्यादयः। छन्दः—अतिशक्वरी। स्वरः—पञ्चमः॥

स्योनं सदः

देवं बर्हिर्वारितीनामध्वरे स्तीर्णमश्विभ्यामूर्णम्रदाः सरस्वत्या स्योनमिन्द्र ते सदः ।

ईशायै मन्युराजानं बर्हिषा दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥५७॥

१. 'वार' शब्द वृ वरणे धातु से बनकर यहाँ वरणीय परमात्मा का वाचक है (वारितात्मन् वरणीये परमात्मनि इतिर्गतिर्येषां) वारितीनाम्=परमात्मा में विचरनेवाली 'वरतराणां' अतएव श्रेष्ठ जीवनवाले प्रजाओं को अध्वरे=इस हिंसारहित जीवन-यज्ञ में देवम्=प्रकाशमय बर्हिः=वासनाशून्य हृदय स्तीर्णम्=आच्छादित हुआ है। २. यह परमेश्वर में विचरनेवाला व्यक्ति अश्विभ्याम्=प्राणापान से, प्राणसाधना के द्वारा ऊर्णम्रदाः=(ऊर्ण आच्छादने) ज्ञान को ढकनेवाले वृत्र का मर्दन करनेवाला बना है। ३. प्रभु कहते हैं कि हे इन्द्र=वृत्र का संहार करनेवाले 'आत्रेय' ते=तेरा सदः=निवासस्थान सरस्वत्या =ज्ञानाधिदेवता से स्योनम्=बड़ा सुखकर हुआ है। मनुष्य ज्ञानप्रधान जीवनवाला हो तो संसार में वह अज्ञानजनित क्लेशों से बचकर बड़े सुखी जीवनवाला होता है। ४. ईशायै =ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए मन्युम् =ज्ञान को राजानम्=दीप्ति को अथवा आत्मनियन्त्रण व व्यवस्था को, बर्हिषा=वासनाशून्य हृदय के साथ इन्द्रियम्=इन्द्रियों की शक्ति को दधुः=प्राणापान व सरस्वती इसमें धारण करते हैं। इनको धारण करके वह ईश का ही छोटा रूप बन जाता है। ५. वसुवने=वस्तुओं की प्राप्ति के लिए वसुधेयस्य=वीर्य का व्यन्तु=शरीर में व्यापन करे। ६. प्रभु कहते हैं कि इसी उद्देश्य से तू यज=यज्ञशील बन।

भावार्थ—ईश का छोटा रूप बनने के लिए हम ज्ञानी बनें, नियमित व नियन्त्रित जीवनवाले हों, हृदय को वासनाशून्य बनाएँ और सब इन्द्रियों की शक्ति को स्थिर रक्खें, क्षीण न होने दें।

ऋषिः—स्वस्त्यात्रेयः। देवता—अश्व्यादयः। छन्दः—अत्यष्टि^क, निचृत्विष्टुर्।

स्वरः—गान्धारः^क, धैवतः[॥]

स्विष्टकृद् अग्निः

^कदेवोऽअग्निः स्विष्टकृद्देवान्यक्षद्यथायथःहोताराविन्द्रमश्विना वाचा वाचःसरस्वती-मग्निःसोमंश्स्विष्टकृत् स्विष्टऽइन्द्रः सुत्रामा सविता वरुणो भिषगिष्टो देवो वनस्पतिः स्विष्टा देवाऽआज्यपाः ^१स्विष्टोऽअग्निर्ग्निना होता होत्रे स्विष्टकृद्यशो न दधदिन्द्रियमूर्जमर्पचितिश्स्वधां वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥५८॥

१. देवः=दिव्य गुणोंवाला अग्निः=यह यज्ञ का अग्नि स्विष्टकृत्=उत्तम इष्टों को पूर्ण करनेवाला है। वस्तुतः यज्ञाग्नि सब कामनाओं को पूर्ण करनेवाली है 'एष वोऽस्विष्टकामधुक्'।
 २. इस यज्ञाग्नि को अपनानेवाला व्यक्ति यथायथम्=ठीकरूप से देवान् यक्षत्=देवों का यजन=अपने साथ मेल करता है। ३. होतारौ=मित्र और वरुण का अपने साथ मेल करता है, इन्द्रम्=उस परमैश्वर्यशाली परमात्मा का अपने साथ मेल करता है। वस्तुतः मित्र और वरुण के साथ मेल परमात्मा से मेल का साधन होता है। सबके साथ स्नेह करनेवाला तथा द्वेष के अभाववाला व्यक्ति ही परमात्म-प्राप्ति का अधिकारी बनता है। ४. यह यज्ञशील पुरुष अश्विना=प्राणापान का अपने साथ मेल करता है। यज्ञ से प्राणापान की शक्ति बढ़ती है। ५. वाचा (मन्त्रेण-म०) ज्ञान की वाणियों के द्वारा वाचम्=वाणी की शक्ति को बढ़ाता है तथा सरस्वती=इस मन्त्रों की वाणी से ज्ञानाधिदेवता का भी आराधन करता है। ६. इस यज्ञ से अग्निं सोमम्=अग्नि तत्त्व तथा सोम तत्त्व का भी अपने साथ मेल करता है। अग्नि तत्त्व तेजस्विता का प्रतीक है तो सोम शान्ति का। एवं, इस यज्ञशील पुरुष में 'शक्ति व शान्ति' दोनों का समन्वय होता है। ७. इस प्रकार इन देवताओं से अपना मेल करता हुआ यह यज्ञशील पुरुष स्विष्टकृत्=अपने उत्तम इष्टों को सिद्ध करनेवाला होता है। इसके द्वारा सुत्रामा=उत्तम त्राण करनेवाला वह इन्द्रः=परमैश्वर्यशाली प्रभु स्विष्टः=उत्तमता से अपने साथ सङ्गत किया जाता है। सविता=निर्माण की देवता, वरुणः=द्वेष-निवारण की देवता जो भिषक्=सब रोगों की चिकित्सक है, वह इष्टः=अपने साथ सङ्गत की जाती है। वस्तुतः प्रभु-स्मरणपूर्वक मनुष्य निर्माण के कामों में लगा रहे और किसी से द्वेष न करे तो वह रोगों का शिकार नहीं हो सकता। बीमार वही पड़ा करते हैं जो (क) प्रभु को भूल जाते हैं। (ख) आलसी बने रहकर उत्तम कार्यों में अपने को व्याप्त नहीं रखते तथा (ग) औरों से द्वेष करते रहते हैं, औरों की उन्नति से ईर्ष्या के कारण जलते रहते हैं। ८. इस यज्ञशील पुरुष के द्वारा देवः=दिव्य गुणोंवाला वनस्पतिः=यह वानस्पतिक भोजन ही स्विष्टः=अपने साथ सङ्गत किया जाता है। ९. साथ ही आज्यपाः देवाः=घृत आदि सात्त्विक पदार्थों का सेवन करनेवाले विद्वान् पुरुष स्विष्टः=उत्तमता से अपने साथ सङ्गत किये जाते हैं, अर्थात् यह यज्ञशील पुरुष उत्तम सात्त्विक भोजन करता है तथा विद्वानों के साथ अपना मेल बढ़ाता है। १०. इसी यज्ञशील पुरुष से अग्निना =इस यज्ञिय अग्नि के द्वारा अग्निः=वह परमात्मा स्विष्टः=उत्तमता से अपने साथ सङ्गत किया जाता है और यह होता=सब पदार्थों को देनेवाला या संसारयज्ञ को चलानेवाला प्रभु होत्रे=इस दानपूर्वक अदन करनेवाले के लिए स्विष्टकृत्=सब उत्तम इष्टों को सिद्ध करनेवाला होता है। यह सृष्टियज्ञ का होता प्रभु यशः=यश का न=और इन्द्रियम्=इन्द्रियों की शक्ति को, ऊर्जम्=बल व प्राणशक्ति को अपचितिम्=पूजा को तथा स्वधाम्=शरीर के धारण करनेवाले अन्न को दधत्=धारण करता है। ११. वसुवने=निवासक तत्त्वों की प्राप्ति के लिए वसुधेयस्य=वीर्य का व्यन्तु=तुम शरीर में व्यापन करो और इस सबके लिए यज=यज्ञशील बनो।

भावार्थ—यज्ञशील पुरुष सब अच्छाइयों को अपने साथ सङ्गत करनेवाला बनता है।

ऋषिः—स्वस्त्यात्रेयः। देवता—अग्न्यादयः। छन्दः—अष्टिः। स्वरः—मध्यमः॥

अग्नि-वरुण

अग्निमद्य होतारमवृणीतायं यजमानः पचन्पक्तीः पचन्पुरोडाशान् बध्नन्नश्विभ्यां छागं सरस्वत्यै मेषमिन्द्रायऽऋषभं सुन्वन्नश्विभ्यां सरस्वत्याऽइन्द्राय सुत्राम्णो

सुरासोमान् ॥५९॥

१. पिछले ११ मन्त्रों में अन्तिम आदेश है 'यज्ञ' = तू यज्ञ करनेवाला बन। १० इन्द्रियाँ तथा ११वें मन को तू यज्ञ में लगानेवाला बन। इस आदेश का पालन करनेवाला **अयं यजमानः** = यह यज्ञ के स्वभाववाला यज्ञशील पुरुष **अद्य** = आज **होतारं अग्निम्** = सब सुखों को देनेवाले, वायुशुद्धि व रोगकृमि-संहार के द्वारा सुखी व नीरोग करनेवाले अग्नि को **अवृणीत** = वरता है, अर्थात् नियमपूर्वक अग्निहोत्र करने का व्रत लेता है। २. उसी के लिए **पचन् पक्तीः** = नाना पाकों को पकाता है और **पुरोडाशान् पचन्** = (आत्मा वै यजमानस्य पुरोडाशः—कौ० १३।५) अपनी आत्मा का भी ठीक परिपाक करता है। शुद्ध आत्मभाव से सामग्री को तैयार करके अग्निहोत्र करता है। ३. यह **अश्विभ्याम्** = प्राणापान के लिए **छागम्** = अजमोद ओषधि का **बध्नन्** = प्रबन्ध करता है, **सरस्वत्यै** = ज्ञानाधिदेवता के लिए **मेषम्** = मेढासिंगी ओषधि का प्रबन्ध करता है और **इन्द्राय** = इन्द्रियों की शक्ति के विकास के लिए **ऋषभम्** = ऋषभक ओषधि का प्रबन्ध करता है। ४. इन ओषधियों के यज्ञों की व्यवस्था के साथ-साथ यह **अश्विभ्याम्** = प्राणापान के लिए **सरस्वत्यै** = ज्ञानाधिदेवता के लिए तथा **सुत्राम्णे इन्द्राय** = उत्तमता से अपना त्राण करनेवाले इन्द्र के लिए **सुरासोमान्** = (सुर to govern) आत्मशासन व आत्मनियन्त्रण से युक्त वीर्यकणों का **सुन्वन्** = अभिषेक व उत्पादन करता है। वस्तुतः नियन्त्रित वीर्यशक्ति के बिना 'प्राणापान-ज्ञान व आत्मशक्ति' की प्राप्ति सम्भव ही नहीं।

भावार्थ—हम यज्ञशील बनें। यज्ञ के लिए आत्मभाव को पुष्ट करें। प्राणापान-ज्ञान व आत्मशक्ति के विकास के लिए जहाँ विविध औषध-द्रव्यों की आहुति दी जाए वहाँ वीर्यकणों का संयम के द्वारा शरीर में ही व्यापन किया जाए।

ऋषिः—स्वस्त्यात्रेयः। देवता—लिङ्गोक्ताः। छन्दः—धृतिः। स्वरः—ऋषभः॥

देवो वनस्पतिः

सूपस्थाऽअद्य देवो वनस्पतिरभवदश्विभ्यां छागेन सरस्वत्यै मेषेणेन्द्रायऽ ऋषभेणाक्षं-स्तान् मेदस्तः प्रति पचतागृभीषतावीवृधन्त पुरोडाशैरपुंरश्विना सरस्वतीन्द्रः सुत्रामा सुरासोमान् ॥६०॥

१. गतमन्त्र के अग्नि का वरण करनेवाले यजमान के लिए **अद्य** = आज **देवः** = दिव्य गुणों से युक्त, उत्तम व्यवहार को सिद्ध करनेवाला यह **वनस्पतिः** = संसार वृक्ष **सूपस्थाः** = उत्तम उपस्थानवाला होता है (सुष्ठु उपतिष्ठते = सुष्ठु सेवते), अर्थात् यज्ञशील पुरुष के लिए यह संसार कल्याण-ही-कल्याण करता है। २. **अश्विभ्याम्** = प्राणापान के लिए **छागेन** = अजमोद ओषधि से यह संसार-वृक्ष उसका उत्तम सेवन करनेवाला **अभवत्** = होता है। इसी प्रकार **सरस्वत्यै** = ज्ञानाधिदेवता के लिए **मेषेण** = मेढासिंगी ओषधि से यह उत्तम सेवन करनेवाला होता है और **इन्द्राय** = आत्मशक्ति के विकास के लिए **ऋषभेण** = ऋषभक ओषधि से यह उत्तम सेवन करनेवाला होता है। ३. **तान्** = उन औषध-द्रव्यों को **मेदस्तः** = गूदे से **अक्षन्** = खाते हैं, उनके उस मध्यभाग का ग्रहण करते हैं जो मध्यभाग औषध-गुणों से युक्त होता है। **प्रतिपचता** = प्रत्येक अवयवों का **अगृभीषत** = ग्रहण करते हैं और इस प्रकार इनके पक्व अवयवों के ग्रहण से **पुरोडाशैः** = आत्मभावों से **अवीवृधन्त** = बढ़ते हैं। इस प्रकार इन ओषधियों के समुचित प्रयोग से आत्मशक्ति का विकास होता है। ४. **अश्विना** = प्राणापान,

सरस्वती=ज्ञानाधिदेवता तथा सुत्रामा इन्द्रः=उत्तम त्राण करनेवाला इन्द्र ये सुरासोमान्=आत्मनियन्त्रण से युक्त अथवा ऐश्वर्य से युक्त सोमकणों का अपुः=पान करते हैं, अर्थात् ये वीर्य की रक्षा में सहायक होते हैं और वीर्यरक्षा द्वारा स्वयं वृद्धि को प्राप्त करते हैं।

भावार्थ—यज्ञशील पुरुष के लिए यह संसार-वृक्ष उत्तम औषध-द्रव्यों से उपस्थान (सेवन) करनेवाला होता है।

ऋषिः—स्वस्त्यात्रेयः। देवता—लिङ्गोक्ताः। छन्दः—भुरिग्विकृतिः। स्वरः—मध्यमः॥

भद्रा वाणी

त्वामद्यऽऋषेऽआर्षेयऽऋषीणां नपादवृणीतायं यजमानो बहुभ्यऽआ सङ्गतेभ्यऽएष मे देवेषु वसु वार्यायक्ष्यतऽइति ता या देवा देव दानान्यदुस्तान्यस्माऽआ च शास्वा च गुरस्वेषितश्च होतरसि भद्रवाच्याय प्रेषितो मानुषः सूक्तवाकाय सूक्ता ब्रूहि ॥६१॥

१. संसार में मनुष्य को 'शतायु पुत्र-पौत्रों का, भूमि के महान् आयतन=विस्तृत क्षेत्र का, अन्य दुर्लभ काम्य पदार्थों का, पशु-हस्ति-हिरण्य व अश्वों का व दीर्घ जीवन' का प्रभोलन भी कभी-कभी प्राप्त हो जाता है, परन्तु यज्ञशील पुरुष इनके प्रलोभन में न पड़कर आत्मा का ही वरण करता है। यहाँ मन्त्र में कहते हैं कि अद्य=आज अयं यजमानः=यह यज्ञशील पुरुष बहुभ्यः=बहुत-सी आसङ्गतेभ्यः=चारों ओर से एकत्र हुई-हुई इन प्रेयमार्ग की वस्तुओं से ऊपर उठकर हे ऋषे=सर्वज्ञ, आर्षेय=ऋषियों को लिए हितकर, ऋषीणां नपात्=ऋषियों के न गिरने देनेवाले प्रभो! त्वाम्=आपको ही अवृणीत=वरता है, क्योंकि वह समझता है कि एषः=यह आप ही मे=मुझे देवेषु=सब देवों में होनेवाले वारि=वरणीय वसु=निवास के लिए आवश्यक वस्तु का आयक्ष्यते=सर्वथा दान करेंगे। २. इति=अतः हे देव=सब-कुछ देनेवाले प्रभो! या =जिन दानानि=दानों को देवाः अदुः=देवलोग देते हैं तानि=उन दानों को अस्मै=इस आपका वरण करनेवाले के लिए आप आशास्व=इच्छा कीजिए च=और आगुरस्व=देने के लिए उद्योग कीजिए, हाथ ऊपर उठाइए। ३. इस प्रार्थना पर प्रभु कहते हैं कि हे होतः=यज्ञशील पुरुष! तू इषितः असि=प्रेरणा दिया गया है कि मानुषः=मनुष्य इस संसार में भद्रवाच्याय=कल्याणकर, सुखात्मक वाणी के लिए प्रेषितः=भेजा गया है, सूक्तवाकाय=सुन्दर कथनवाले वाक्यों के लिए भेजा गया है, अतः तू सूक्ता ब्रूहि=उत्तम वचनों को ही बोलनेवाला हो। वास्तव में यह भद्रवाणी ही उसे देवों से प्राप्य उत्तम वस्तुओं को प्राप्त कराएगी।

भावार्थ—हम प्रेय व श्रेय में से श्रेय का वरण करते हुए परमात्मा का ही वरण करें। इस वरण से सब देवों से प्राप्य दान तो हमें प्राप्त होंगे ही और भद्रवाणी को बोलते हुए हम इस संसार को स्वर्ग बना पाएँगे।

नोट : इस अध्याय का मुख्य विषय यज्ञिय जीवनवाला बनना है। भोगप्रवण जीवन से ऊपर उठकर यह अपनी इन्द्रिय-शक्तियों को जीर्ण नहीं होने देता और तेजस्वी बनकर अपने व्यवहार में भी बड़ा मुधर होता है, परिणामतः इसका तेज बढ़ता है, यह तेजस्वी बनता है। इसी शब्द से अगले अध्याय का प्रारम्भ होता है।

इत्येकविंशोऽध्यायः॥